सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुख सूत्र प्रवचन

भाग 26

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु॰ मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[षडविंश भाग]

(प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी)

नय और नयाभासके परिज्ञानकी आवश्यकता—इस ग्रन्थमें अब तक प्रमाण और प्रमाणाभासका निर्दोष रूपसे लक्षण कह दिया गया है और प्रमाण प्रमाणाभासके अंगका भी विशद रूपसे वर्णन हो चुका है। इसका फल क्या है इसका भी वर्णन किया गया। और, तत्त्व निर्णयके लिए साधन साधनाभास, भूषण और दूषणका परिज्ञान कैसे हो उस पद्धतिका भी वर्णन किया गया, लेकिन सब कुछ जानकारियां किसी न किसी दृष्टिपर ही निर्भर हैं। जब प्रमाण और प्रमाणाभासोंके स्वरूपके अंगोंकी विवेचना चलती है तो वह सब दृष्टिके बलपर ही चलती है। और दृष्टिका ही नाम है नय। तो नय और नयाभासका लक्षण बताना भी बहुत आवश्यक है। क्योंकि नय और नयाभासका कथन किए बिना शिष्योंको सम्पूर्णतया व्युत्पत्ति नहीं हो सकती। मोक्षमार्गके प्रकरणमें यदि नय और नयाभासकी पद पदपर निर्णीत चाहिए और तत्त्वनिर्णयमें भी नय और नयाभासका परिज्ञान चाहिये तो ये सब वर्णन भी समझ लेना चाहिए, ऐसा अभिप्राय रखकर सूत्रकार सूत्र कहते हैं—

संभवदन्यद्विचारणीयम् ॥६-७४॥

नय और नयाभासका सामान्यतया स्वरूप—जितना जो कुछ वर्णन अब तक किया गया है प्रमाण और प्रमाणाभास, उनसे अविशिष्ट अन्य कुछ भी जो संभव हो उसका विचार करना चाहिये। अब यहां प्रसंगमें प्रमाण और प्रमाणाभाससे अन्य विद्यमान समस्या है नय और नयाभासकी। तो उसका लक्षण अब विचार करते हैं। इस प्रकरणमें नयोंका जो वर्णन किया जायगा वह एक दिग्दर्शन मात्र होगा। अर्थात् उसका सहारा लेकर, उस दिशामें बढ़कर भिन्न भिन्न अनेक प्रमाणों की सिद्धि की जा सकी तो नयका लक्षण सामान्यरूपसे भी जानना चाहिए और विशेषरूपसे भी जानना चाहिए। उनमेंसे प्रथम सामान्यतया नयका लक्षण कहते हैं। ऐसा ज्ञाताका अभिप्राय जो कि वस्तुके अंशको ग्रहण करने वाला है अर्थात् जानने वाला है तथा उस ज्ञेय तत्त्वके प्रतिपक्षका निराकरण भी न किया गया हो ऐसे अभिप्रायको नय कहते हैं। और, जैसे ज्ञाताके अभिप्रायमें ग्रहण तो वस्तुके अ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ हो लेकिन प्रतिपक्षका भी निराकरण बसा हो तो वह नयाभास कहलाता है। इस प्रकार नय और नयाभासका यह सामान्य लक्षण है।

नयका विवरण—नय औ नयाभासमेंसे प्रथम नयका वर्णन किया जाता है कि नय जिसका कि सामान्यरूपसे लक्षण ऊपर किया गया है वह दो प्रकारका है द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। द्रव्यार्थिकनय उसे कहते हैं जिसका द्रव्य ही विषय हो, पर्यायार्थिकनय उसे कहते है जिसका पर्याय ही विषय हो। द्रव्यका अर्थ है जो पर्यायोंको प्राप्त करता रहा, पर्यायोंको प्राप्त करेगा और पर्यायोंका प्राप्त कर रहा ऐसा जो कुछ एक वस्तुभूत सत् है उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसा द्रव्य जिस दृष्टिमें विषयभूत हो उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और पर्यायका अर्थ है परिणमन, अध्रुव तत्व। वह परिणमन जिस दृष्टिमें विषयभूत होता हो उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं। इस तरह नयके इन दो भेदोंका लक्षण कहनेसे नयोंका विशेष लक्षण परिचयमें आया द्रव्यार्थिकनयके तीन भेद हैं—नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय। और पर्यायार्थिकनय चार प्रकारका है सूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय व एवंभूतनय। अब द्रव्यार्थिकनयके तीन प्रकार और पर्यायर्थिक समीपरूढ़नय चार प्रकार, यों ७ प्रकारके नयोंका क्रमसे वर्णन करते हैं।

नैगमनय—उक्त ७ नयोंमें प्रथमभेद है नैगमनय। नैगमनयका लक्षण है कि अनिष्पन्न अर्थमें संकल्प मात्रसे उस अर्थको ग्रहण करने वाला जो ज्ञान है, आशय है उसे नैगमनय कहते हैं। नैगमका व्युत्पत्यर्थ भी इस ही प्रकार है। निगमका अर्थ है संकल्प और निगममें होने वाला अर्थात् संकल्प ही जिसका प्रयोजन हो उसे नैगमनय कहते है। जैसे कोई पुरुष कुल्हाड़ी लेकर जंगलकी ओर जा रहा था, उससे किसीने पूछा कि भाई ! कहाँ जा रहे हो ? तो वह कुल्हाड़ी वाला पुरुष कहता है कि मैं प्रस्थको लेने जा रहा हूँ। प्रस्थ एक मापका बर्तन है जिसमें मानो ४–५ किलो चीज समाये ऐसा काठका बर्तन हो उसे प्रस्थ कहते हैं। उस प्रस्थको लेने जा रहा हूँ ऐसा वह बोलता है। अब यहाँ देखिये कि प्रस्थ पर्यायनिष्पन्न तो नहीं है, पर प्रस्थकी निष्पत्तिके लिए उसने संकल्प किया है और प्रस्थ बनानेके लिए वह कुल्हाड़ी लेकर जंगलमें चला है, प्रस्थ बनाई जा सकने लायक लकड़ी लानेके लिए तो इसने संकल्पमात्रमें ही उस प्रस्थको समझ रखा है और प्रस्थ लानेके लिए ही जा रहा हूँ, इस तरह वह बोल रहा है तो यह नैगमनय हुआ। अथवा कोई पुरुष ईंधन अथवा पानी लानेमें लगा हुआ था। उस पुरुषसे किसीने पूछा कि भाई, आप क्या कर रहे हैं, तो वह बोलता है कि मैं चावल पका रहा हूं, रसोई बना रहा हूँ। तो चावल पर्याय अभी निष्पन्न तो नही है, भात अभी बना तो नही है, पर भात बनानेके लिये उस पुरुषने इरादा किया है और उस इरादा मात्रसे वह भातका व्यवहार बना रहा है। तो यों अनिष्पन्न अर्थको संकल्प मात्रसे ग्रहण कर रहा है इस कारण यह आशय नैगमनय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहलाता है। इसकी दूसरी व्युत्पत्तिके अनुसार अर्थ करनेपर भी नैगमके नयका मर्म जाना जाता है। नैगमका व्युत्पत्त्यर्थ है जो एकको गम (ग्रहण करने वाला) न हो। गम कहते हैं प्राप्त होनेको। जो एक हीको प्राप्त न हो उसे नैगम कहते हैं अर्थात् इस ज्ञाताके अभिप्रायमें दो बाते हैं। पहिले बताये गए व्युत्पत्त्यर्थमें भी दो बातें थीं— लकड़ी और प्रस्थ। अथवा दूसरे दृष्टान्तमें जल और भात या रसोई। तो इस प्रकार नैगमनयके अभिप्रायमें निष्पन्न और अनिष्पन्न ये दो बाते रहा करती हैं अथवा द्रव्य और पर्याय इन दो बातोंमें एकको गौण कर देना, दूसरेको प्रधान कर देना और जिसको अभी गौण किया था उसे प्रधान कर देना, अन्यको गौण कर देना अथवा भेद और अभेद रूपसे प्ररूपण करना इसे कहते हैं नैगमनय। एकको प्राप्त नहीं है उसे नैगमनय कहते हैं, क्योंकि नैगमनयके आशय में धर्म और धर्मीको गौण और प्रधान भावसे बताया गया है। जैसे जब यह प्रयोग किया जाय कि जीवका गुण सुख है तो इस प्रयोगमें जीवकी तो गौणता है और सुखकी प्रधानता है, क्योंकि जीव तो विशेषण रूपमें आया है और सुखकी प्रधानता है क्योंकि विशेष्य सुख बना हुआ है। जीवका गुण सुख है। तो यहाँ अस्तित्व किसमें लादा जा रहा है? प्रधान पद कौनसा है ? वह है पर्यायरूप सुख और जब यह प्रयोग किया जाय कि सुखी जीव है तो इस कथनमें जीवकी प्रधानता आई, सुखकी प्रधानती नही आई। क्योंकि सुखी तो है विशेषण और जीव है विशेष्य। तो जैसे यहाँ द्रव्य और पर्यायमें कभी पर्यायकी प्रधानता हुई तो कभी द्रव्यकी प्रधानता हुई।

नैगमनयके विषयकी प्रमाणविषयतासे अन्यता—शंका एकको प्राप्त नहीं हुआ इस कारण यह सब पर्यायात्मकताका बात आ गयी। नयको इसमें क्या बात रही ? वस्तुका एक अंश क्या ग्रहण किया ? सुख, जाना तो सब जाना। जीवको जाना तो जीवको जाना। इसे प्रमाणरूप क्यों नही मान लिया जाता ? समाधान उसका यही है कि प्रमाणात्मक ज्ञानमें धर्म और धर्मीका भेद रूपसे ज्ञान नहीं होता तथा उनमेंसे एकको प्रधानरूपसे जानना, अन्यको गौण रूपसे जानना, ऐसी बात प्रमाणात्मक ज्ञानमें नही होती। पर यहाँ नैगमनयमें तो उन द्रव्य और पर्यायोंमेंसे धर्म और धर्मीमेंसे कोई एक ही प्रधानरूपसे अनुभूत किया जा रहा है तब द्रव्य पर्याय-द्वयात्मक पर्यायका अनुभवन करने वाला विज्ञान बने तो उसे प्रमाण मानना चाहिए। पर जहाँ द्रव्य पर्यायमें एकको प्रधान रूपसे, अन्यको गौण रूपसे ग्रहणकी बात चल रही हो तो वहाँ व प्रमाण ज्ञान नही किन्तु, नयरूप ज्ञान है। यह नैगमनयमें द्रव्य पर्यायमें धर्म धर्मीमें निष्पन्न अनिष्पन्नमें प्रधानता और गौणरूपसे ज्ञान किया। इसी कारण यह नैगमनय कहलाता है।

नैगमाभास—जहां धर्म धर्मीमें निष्पन्न अनिष्पन्नमें द्रव्य पर्यायमें सर्वथा याने एकान्तरूपसे भिन्नताका अभिप्राय बना ले तो वह नैगमाभास कहलाने लगता है। इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण यह है कि धर्म धर्मी सर्वथा भिन्न हो ऐसा तो कुछ विषय ही नहीं है। जो बात किसी भी प्रकार विषयभूत ही नहीं, उसे जानें तो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता वह अंशका परिज्ञान सम्यक्में नहीं कहलाता, धर्म और धर्मीमें सर्वथा अभिन्नता यदि मान ली जाती है तो फिर धर्मीमें धर्मका रहना भी कैसे बन सकता है ? जैसे आत्मा धर्मी है, ज्ञानानन्द वह धर्म है। अब यदि आत्माको भिन्न मान लिया जाता और उन धर्मोंका ज्ञान और आनन्दभावको एक जुदा पदार्थ मान लिया जाता तो जब ये दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ मान लिये गये तो अब यह कैसे कहा जा सकता कि ज्ञान और आनन्द आत्मामें रहा करते हैं। जब स्वतंत्र दो पदार्थ हो गए तो उनका आधार नहीं बताया जा सकता। जैसे विन्ध्याचल और हिमालयपर्वत। ये दो भिन्न स्वतंत्र पूर्ण सत् हैं। तो इनका आधार आधेय तो नहीं कहा जा सकता कि हिमालयमें विन्ध्याचल है और विन्ध्याचलमें हिमालय है। ऐसे ही आत्मा धर्मीको ज्ञानानन्द आदिक धर्मसे सर्वथा भिन्न मान लिया जाय तो यह किसी भी प्रकार नहीं सिद्ध किया जा सकता कि ज्ञान और आनन्द आत्माओंमें हुआ करते। जब सर्वथा भिन्नपना मान लिया गया तो ये ज्ञानानन्द आकाशमें क्यों नहीं हो जाते ? तो इससे विदित होता कि धर्म और धर्मीमें भिन्नता नहीं है सर्वथा अभिन्नता भी यदि कह दी जाय तो उस नाम व्यपदेश धर्म धर्मी रूपसे उनकी जानकारी ये सब कुछ नहीं हो सकते हैं। तो यों धर्म धर्मीमें कथंचित भेद और कथंचित् अभेद है और उसीमें ही व्यवस्था बनती है। किन्तु कोई सर्वथा भेद स्वीकार करले अथवा सर्वथा अभेद स्वीकार करले तो वह नयाभास हो जायगा। तो यहाँ नैगमनयके विषयभूत धर्म धर्मीमें सर्वथा भिन्नताको अभिप्राय होना यह नैगमाभास कहलाता है। इस तरह नैगमनय और नैगमाभासका वर्णन किया गया है। इसमें यह नैगमनय बहुत विशाल विषयको लिए हुए है। इसके आगे जो भी नय चलेंगे वे अपने अपने पूर्व नयसे सूक्ष्मरूपको लिए हुए हैं। और उसका पूर्व पूर्वनय एक व्यापक रूपको लिए हुए है। तो इन ७ नयोंमेंसे सबसे अधिक बड़ा विषय है तो नैगमनयका है।

परसंग्रहनयका परिचय—दूसरा द्रव्यार्थिकनय है संग्रहनय। अपनी जातिका विरोध न करते हुए पदार्थोंको जिसने अपनेमें लीन किया है ऐसे समस्त पदार्थोंको एक प्रकारतासे लाकर सबको ग्रहण करे उसे संग्रहनय कहते हैं। जिसका सीधा भाव यह है कि जो सब पदार्थोंका संग्रह करे और एकपनेमें जिसका परिज्ञान अथवा प्रतिपादन हो उसको संग्रहनय कहते हैं। वह संग्रहनय दो प्रकारका है—परसंग्रह और अपरसंग्रह। जिसमें परसंग्रह तो समस्त पदार्थोंका सत्तात्मरूपसे एकत्वको विषय करता है जैसे कि सर्व एकं कुछ एक है। क्योंकि सबमें सत्की अविशेषता है। सभी सत् है। तो सत्त्वकी दृष्टिसे जगतमें जो कुछ भी है वह सब सत् है सत्की अविशेषता होनेसे, ऐसा कहनेपर समस्त पदार्थोंका एकत्व संग्रहीत किया गया है। और, वह एक-सत्तात्मरूपसे संग्रहीत है। और समस्त पदार्थोंमें एक सत्तात्मकता है। इस प्रकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का बोध किया है यह सत् यह सत् ऐसे अनुवृत्तिरूप वचनसे । जिसमें इदं सत्, यह भी सत् इस प्रकारका एक रूपसे वचन चल रहा है। और सभी पदार्थोंमें जिस प्रकार समान वचन चलता है और इसी प्रकार समान ज्ञान भी चलता है। सभी पदार्थोंके विषयमें यह सत् है, यह सत् है। समान रूपसे सत्का ज्ञान हो रहा है तो समान रूप से सत्का ज्ञान हो रहा है तो समानरूपसे सत् वचन और सत् विज्ञान इस लिङ्गसे समस्त पदार्थोंकी सत्तात्मकता रूपसे एकता है। यह अनुमित होता है इसमें संग्रहनय द्वारा समस्त पदार्थोंका यह एकत्व विषय होता है। लेकिन कोई ऐसा एक सत्त्व मानना कि समस्त विशेषोंका निराकरण करदे अर्थात् एकान्ततः सब एक ही है, उस में विशेष कुछ नहीं मानना। जैसे कि द्रव्य है, गुण है, पर्याय हैं, पुद्गल है, आत्मा है आदिक कुछ भी विशेषतायें न माने, सबका निराकरण करे। और एक सत्त द्वैतको ही अभिप्राय रखे तो ऐसा अभिप्राय संग्रहाभास है, क्योंकि समस्त विशेषोंका निराकरण करते हुए एक रूप ही मानना यह प्रत्यक्षसे भी बाधित है और आगमसे भी बाधित है, अनुमानसे भी बाधित है।

अपर संग्रहनयका परिचय – अब दूसरा संग्रहनय है अपर संग्रह। यह अपर संग्रहनय द्रव्यरूपसे समस्त द्रव्योंका एकत्व विषय करता है। पर संग्रहनय तो सबने एक रूपसे ग्रहण किया। उससे विशाल संग्रह कुछ नहीं होता। पर संग्रह एक रूप ही होता है। अपर संग्रह पर संग्रहसे ग्रहण किए गए एकत्वमे भेद लाकर किसी एक भेद रूपमें अपनी जातिका [illegible] संग्रह करता यह अपर संग्रहनयका विषय है। यहाँ द्रव्य, ऐसा कहनेपर [illegible] द्रव्य वर्तमान काल वर्ती विवक्षित और अविवक्षित पर्यायोंसे परिणमन [illegible] समस्त जीव अजीवोंका और उनके भेद प्रभेदका एकत्व रूपसे संग्रह किया जाता है। इस संग्रहनयका लक्षण यों भी कह सकते हैं कि विशेषकी अपेक्षा रखता हुआ जो सत्ता मात्रको ग्रहण करता है उसे संग्रह कहते हैं। संग्रहमें होता ही यह है, [illegible] जिन पदार्थोंका हम संग्रह कहते हैं उनमें संग्रहपनेका तो एकपना है किन्तु [illegible] ही तो संग्रह है, अन्यथा संग्रह नाम किसका? संग्रहनयमें विषय यद्यपि एक [illegible] भी है लेकिन उसमें नानापन लेना है उन नाना पदार्थोंने ही तो एकत्व [illegible] में ग्रहण किया है, अतएव संग्रहमें ग्रहण तो सत्तामात्रका है लेकिन [illegible] अपेक्षा रखता हुआ है वह। और भी दृष्टान्त लो। जैसे घट कहा तो घट [illegible] घट व्यक्तियोंका घटपनेसे एकत्वका संग्रह हुआ है। अपर संग्रह नाना प्रकार [illegible] हैं [illegible] संग्रहके भी भेद करके उन भेदोंमेंसे एकका संग्रहरूप बनाना भी [illegible] संग्रह है जहाँ तक संग्रह चल सकता है चाहे थोड़े पदार्थोंमें हो, एकत्व का विषय [illegible] हैं वहाँ तक वे सब अपर संग्रहनय हैं। और इस अपर संग्रहमें [illegible] विशेष ये न सर्वथा अभेदरूप हैं न सर्वथा भेदरूप हैं, तथा सामान्य का विशेष [illegible] को सामान्य बनाया ना, अपर संग्रहमें अर्थात् किसी एक बड़े संग्रहमें [illegible] विशेष करके उन विशेषोंमेंसे एक विशेषको सामान्य बनाकर संग्रह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूप बनाकर उसमें और प्रविशेषोंको अन्तर्लीन किया है तो इस पद्धितिमें सामान्य और विशेषोंको सर्वथा भिन्नपना माननेका अभिप्राय अपर संग्रहाभास है. और सर्वथा अभिन्न माननेका अभिप्राय भी अपर संग्रहाभास है, क्योंकि इसमें प्रतीतिसे विरोध आता है। सामान्य और विशेष प्रतिभासभेदसे भेदरूप है किन्तु वे स्वतंत्र अलग–अलग सामान्य और विशेष पदार्थ पड़े हुए हो ऐसा नही है। इस दृष्टिसे अभिन्न रूप है। सामान्य और विशेष परस्पर कथंचित् भेदरूप, कथंचित् अभेदरूप होनेपर भी उनमें सर्वथा अभेदपनेका अभिप्राय करे तो अपर संग्रहाभास है। और, सर्वथा भेदपनेका अभिप्राय करे तो भी अपर संग्रहाभास है।

व्यवहारनयका परिचय—अब तीसरा द्रव्यार्थिकनय है व्यवहारनय। संग्रहनयसे ग्रहण किये गए पदार्थोंका विधि पूर्वक विभाग करना, भेदरूपमें विभाजन करना सो व्यवहारनय है। यह व्यवहारनय द्रव्यको विषय कर रहा है। पर्यायका विषय करने वाले नयका भी अपर नाम व्यवहार है अध्यात्म शास्त्रोंमें, यहाँ उस व्यवहारनयसे प्रयोजन नही, किन्तु संग्रहनयके ग्रहण किए हुए पदार्थोंका पदार्थकी पद्धितिमें विधि पूर्वक विभाग करनेको व्यवहारनय कहते हैं। जिसपर संग्रहनयने तो सत् इस प्रकार समस्त पदार्थोंका एकत्वरूपमें संग्रह किया, क्योंकि सर्व पदार्थ सत् धर्मके आसारभूत हैं। सब सत् हैं तो सबको एक रूपमें संग्रह किया, पर संग्रहका व्यवहार उसके विभागका विषय करता है। जो सत् है वह द्रव्य है अथवा पर्याय है, उस है को द्रव्यरूपसे निरखा जा सकता है। और, पर्यायरूपमें निरखा जा सकता है। इस प्रसंगमें गुणकी बात नही कही गई इसका कारण यह है कि गुण द्रव्यमें अन्तर्भूत है। केवल अन्तर यह है कि उस द्रव्यको अभेदरूपसे निरखनेपर द्रव्य समझमें आता है और उस द्रव्यको अभेदरूपसे समझनेपर गुण नजर आता है तो द्रव्य और गुणमें भेद और अभेदका अन्तर है। किन्तु द्रव्य जैसे शाश्वत है, गुण भी शाश्वत है, द्रव्य जैसे परिणमनका आधार है और अपने आपके स्वरूपमें अपरिणामित्वको लिए हुए है इसी प्रकार गुण भी पर्यायका आधार है और अपने स्वरूपमें अहरिणामित्वको लिए हुए है। यों द्रव्य और गुण एक समान है एक भेद और अभेद दृष्टिसे परखनेका अन्तर है। जब कि संग्रहनयसे सहित ऐसा कहा जानेपर उसका जो विभाग किया जा रहा है वह द्रव्यरूपमें निरखकर अथवा पर्याय रूपमें निरखकर किया जा रहा है। तो पर संग्रहके भेद द्रव्य और पर्यायरूपमें किया। अब इन दो भेदोंमेंसे एक द्रव्यको ग्रहण करले तो अब यह अपरसंग्रहमें समस्त द्रव्योंमें द्रव्य है ऐसे शब्दकी अनुवृत्ति है और सभी ये द्रव्य हैं, ये द्रव्य हैं, जो जो भी द्रव्य हैं उन सबमें द्रव्यरूपका विज्ञान भी चल रहा है। यों द्रव्यत्वके रूपसे वचन और विज्ञान की समानतारूप चिन्हसे एकत्व जाना जा रहा है। इसी प्रकार सत्के विभाग द्रव्य और पर्यायमेंसे अब पर्यायको दृष्टिमें लेकर संग्रह करता है तो सर्व पर्यायोंमें पर्याय है, इस प्रकार एकत्वरूपसे संग्रह किया जा रहा है। तो यह अपर संग्रह हो गया। संग्रहनयसे किए गए विभागको संग्रहरूपसे विषय करना अपरसंग्रह हुआ, किन्तु व्यवहार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं हुआ। व्यवहारनय तो उसका विभाग विषय करता है। और जब विभाग किया गया तब तो वह व्यवहारनय है, जब उसका संग्रह किया गया तो वह संग्रहनय है।

व्यवहारनयमें वस्त्वनुरूप विभजनकी पद्धति– व्यवहारनय संग्रहका किस प्रकार विषय करता है उसे सुनो? जैसे अपर संग्रहनयने द्रव्य ऐसा विषय किया तो जब जब यों निरखा जाय कि जो द्रव्य है वह जीवादिक ६ प्रकारका है—जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। तो अब अपर संग्रहनयसे द्रव्यरूपसे समस्त द्रव्योंका ग्रहण किया है। अब उन द्रव्योंका विभाग किया जा रहा है। तो इन विभागोंमें पर्यायको नहीं छुवा, किन्तु अखण्ड पिण्डको अब भी देखा जा रहा है, इस नातेसे यह व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है। इसी प्रकार द्रव्य और पर्यायमेंसे द्रव्यका विभाग बताकर पर्यायका विभाग भी समझिये। जो पर्याय है वह दो प्रकारका है। सहभावी और क्रमभावी। सहभावी पर्याय तो उसे कहते हैं जो एक साथ होवे। जैसे कि भेद दृष्टिसे एक द्रव्यमें अनेक गुण देखे गए और जब उन अनेक गुणोंके आश्रयसे उन अनेक गुणोंके प्रत्येक गुणके परिणमन हैं ना, तो यों एक साथ अनेक पर्यायें भी है। तो वे सब पर्यायें सहभावी पर्याय कहलाती हैं। और, उस एक द्रव्यमें भूत भविष्य वर्तमान कालमें होने वाली पर्यायोंपर दृष्टि देकर जब पर्यायपना देखा गया तो वह क्रमभावी पर्याय कहलाती है। यहाँ समस्त पर्यायोंका संग्रह किया गया। तो यह व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है। पर्यायोंको भी पर्यायार्थिकनयसे न नरखकर यहाँ द्रव्यार्थिकनयसे निरखा जा रहा है। जिसमें कि संख्या प्रधान है। नानाका समुदायरूप एक एकका विभागरूप बना इस प्रकारका द्रव्यत्वरूप ही प्रयोजन पर्यायके निरखनेमें पड़ा हुआ है। इस कारण इस पर्यायरूप व्यवहारको भी द्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

व्यवहारनयका क्षेत्र—अपर संग्रहनयके विभाग करके जो व्यवहारनयके द्वारा जाना गया है उसका भी और विभाग किया जाय और इस तरहसे अपरसंग्रहनयका व्यवहार अर्थात् अपर संग्रह बना बनाकर विभाग करते जानेकी पद्धति ऋजुसूत्रसे पहिले पहिले तक की जाती है क्योंकि ऋजुसूत्रनय ऐसी निरंश पर्यायको ग्रहण करता है कि जिसके बाद उसका विभाग सम्भव नहीं है। अतएव ऋजुसूत्रनयसे पहिले पहिले अपर संग्रहोंका व्यवहार चलाया जा सकता है। और, यह संग्रह व्यवहारनयका प्रसंगपर संग्रहनयके बाद प्रारंभ होकर ऋजुसूत्रनयसे पहिले–पहिले होता है। अर्थात् संग्रहनयके बाद कोई संग्रह नहीं किया जा सकता। जैसे ऋजुसूत्रनयके विषयमें विभाग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार पर संग्रहके विषयमें संग्रह भी नहीं बनाया जा सकता है। यह संग्रह व्यवहार प्रपंच इस कारण चलता है कि समस्त वस्तुवें कथंचित् सामान्य विशेषात्मक हुआ करती हैं। जब समस्त पदार्थ सामान्य विशेष रूप हुए तो सामान्यको प्रधान करके तो संग्रहनय बनता है और विशेषको प्रधान करके व्यवहारनय बनता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नैगमनय व व्यवहारनयमें अन्तर—अब यहाँ द्रव्य और पर्यायकी विभिन्नताके प्रकारसे सामान्य विशेष बनाकर संग्रह व्यवहारका भेद तो किया किन्तु कोई यहाँ यह कहे कि इस तरह तो यह व्यवहार नैगमरूप हो जायगा। नैगमनयका संग्रहनय विभाग करनेमें समर्थ हो जायगा। क्योंकि, नैगमनयमें भी प्रधान और गौण पदार्थ विषयमें पड़े हुए हैं। उत्तरमें कहते हैं कि नहीं, नैगमनयका व्यवहार संग्रहनय या संग्रहनयका व्यवहार नैगमनय नहीं हो सकता है। अथवा यह व्यवहार नैगमरूप नहीं हो सकता है। कोई इस प्रकार शंका यदि करे कि जब सामान्य विशेषात्मकता होनेसे प्रधान गौण रूप दृष्टि करके व्यवहार बनाया जा रहा है तो यही बात नैगमनयमें भी थी तो इस व्यवहारनयमें नैगमनयपना आ जायगा, सो बात नहीं, क्योंकि व्यवहारनय संग्रहनयके विषयका विभाग करनेमें समर्थ है किन्तु नैगमनय तो गौण और प्रधानभूत दोनोंको विषय करने वाला है। जैसे कि नैगमनयमें बताया गया था कि जीवका गुण सुख है तो यहाँ जीव तो अप्रधान रहा और सुखकी यहाँ प्रधानता है। तो इस नैगमनयने यहां एकको प्रधान करके और एकको गौण करके विषय किया है। केवल एकको विषय नहीं किया। अथवा जब कहा कि सुखी जीव है तो यहां सुखकी तो अप्रधानता है और जीवकी प्रधानता है। सो नैगमनयसे दोनोंको ही विषय किया है किन्तु व्यवहारनय उन दोनोंमेंसे एकको विषय करता है। हाँ दूसरेके निराकरणकी हठ करता हुआ नहीं करता है। यों व्यवहारमें और नैगमनयमें अन्तर है।

व्यवहाराभास—व्यवहारनयमें जो विभाग किया जाता है वह वस्तुके अनुरूप किया जाता है। लेकिन जो कल्पनासे आरोपित द्रव्य पर्यायके विभागको मानता है वह व्यवहारनय नहीं, किन्तु व्यवहाराभास है, क्योंकि उसमें प्रमाणसे बाधा आती है। अपनी कल्पनाके अनुसार जिस किसी भी प्रकार विभाग बना दे तो वह व्यवहारनयका विषय नहीं है। जैसे कि कोई कहता है कि द्रव्य ९ प्रकारके हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल दिशा आत्मा और मन। अब ये विभाग किसी व्यवस्थाको लिये हुए नहीं हैं। सभी कुछ द्रव्य एक जातिमें आ गये, कुछ द्रव्य रह गये, कुछ द्रव्य ही नहीं हैं, कल्पनासे उनमें द्रव्यरूपता मान ली गई है। इसी प्रकार पर्यायमें यों भेद करना कि पर्यायें, क्रिया उत्क्षेपण अवक्षेपण, आकुञ्चन आदिक ५ प्रकारकी हैं, यह भी एक कल्पनासे आरोपित विभाग है। तो जो कल्पनासे आरोपित द्रव्य पर्यायके विभागको मानता है वह अभिप्राय व्यवहाराभास है, क्योंकि उसपर विचार करनेसे उसमें प्रमाणसे बाधा आती है। यह नहीं कहा जा सकता कि द्रव्य आदिकका विभाग कल्पनासे आरोपित ही होता है। कोई यह कह बैठे कि सब सत् है। यह बात तो सत्य है। अब उसका जो विभाग किया जायगा वह कल्पनानुसार किया जायगा। सो यों अटपट स्वच्छन्द रूपसे कल्पनासे विभाग आरोपित नहीं होता, क्योंकि यदि कल्पनासे ही विभाग बनाया जाय तो फिर वह पदार्थ जिसको व्यवहार-

Version 1

नयसे अन्य अलग बताया है वह अपनी अर्थ क्रियामें कारण नहीं हो सकता। जैसे कोई कल्पनासे आकाशका फूल मान ले तो मानले। कल्पना है उसकी, पर कल्पनासे मान लेने मात्रसे कहीं आकाशपुष्पमें अर्थ क्रिया न हो सकेगी। सुगंधी आये या उस की माला बनायी जा सके, उसका कुछ उपयोग हो सके, यह कुछ न हो सकेगा, क्योंकि वह तो असत् है। केवल एक कल्पनासे प्रारोपित किया गया है। इसी प्रकार द्रव्यसे पर्यायका विभाग केवल कल्पनासे ही आरोपित हो, तत्त्वभूत पाया न जाता हो तो उसमें भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती। इसलिए व्यवहारनय द्वारा जो विभाग किया गया है वह असत्य नहीं है।

व्यवहारनयमें असत्यताके आक्षेपका निराकरण - व्यवहारको असत्य माननेपर व्यवहारकी अनुकूलतासे प्रमाणमें फिर प्रमाणता नहीं हो सकती। प्रमाणमें जो प्रमाणता आती है वह व्यवहारकी अनुकूलतासे ही लायी जाती है। व्यवहारकी अनुकूलता न होनेपर जो ज्ञान है वह बाध्यमान ज्ञान है, उनमें बाधा आयगी। अतएव बाध्यमान ज्ञानोंमें भी फिर प्रमाणताका प्रसंग आ जायगा। फिर तो स्वप्नमें जो भ्रान्त ज्ञान बन रहा है उस भ्रान्त ज्ञानकी अनुकूलतासे भी चूंकि ज्ञान तो चल रहा है, तो उन ज्ञानोंमें भी प्रमाणताका प्रसंग आ जायगा। तो प्रमाणमें जो प्रमाणता लायी जाती है, व्यवहारकी अनुकूलतासे उसमें व्यवहार बन सकता है उसमें हित प्राप्ति और अहित परिहार बन सकता है, वो प्रमाणता मानी जाती है, यों व्यवहार सत्य है। व्यवहार अगर असत्य होता तो प्रमाण व्यवस्थाका भी लोप हो जाता। यहां व्यवहार-नय द्रव्यार्थिकनयरूप है और जैसे संग्रहनयमें अखण्ड पदार्थोंका संग्रह है। जिनका संग्रह किया गया है उनका अखण्डत्व खण्डित नहीं होता है इसी प्रकार संग्रहनयसे ग्रहण किये गये विशेषोंका जो विभाग किया जा रहा है उस विभागमें भी उनका अखण्डपना खण्डित नहीं किया जाता। अथवा वहां द्रव्यका अर्थ परिणमनको गौण रखकर संख्याओंका विषयभूत तत्वग्रहणमें किया गया। इसी कारण यह व्यवहारनय द्रव्यार्थिनयका भेद है पर्यायरूप जो व्यवहरण किया जायगा वह तो ऋजूसूत्रनयसे शुरु होगा। व्यवहारनयमें जो विभाग किया जाय वह पर्यायरूपसे नहीं किया गया है। पर्यायको भी पद्धति ऐसी संख्याके विषयरूपसे स्वीकार करके उनका विभाग किया गया है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनयके तीन भेद—नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनयका वर्णन किया गया है। इससे द्रव्यको विषय करनेपर भी पर्यायका निराकरण नहीं किया गया अतएव यह नय उन्हीं पुरुषोंके लिए नयरूप है जिन्होंने प्रमाणसे वस्तुका परिचय किया है और अब प्रयोजनवश उनमेंसे द्रव्यको विषय करने का अभिप्राय किया है, उनके लिये यह नय है। यदि कोई पर्यायका निराकरण करके केवल द्रव्य विषयको ही ग्रहण करे तो उनके लिये तो यह नयाभास होगा।

ऋजुसूत्रनयका परिचय—पर्यायार्थिकनयमें प्रथम ऋजुसूत्रनय है। ऋजु-

सूत्रनयका अर्थ है कि जो ऋजु अर्थात् सरल, प्राञ्जल याने व्यक्त वर्तमान समयमात्र परिणमनसे जो बोध कराता है उसे ऋजुसूत्रनय कहते हैं, अर्थात् सिद्ध याने एक क्षणवर्ती पर्यायको ग्रहण करने वाला और प्रतिपक्षकी अपेक्षा रखने वाला ऋजुसूत्रनय होता है जैसे कहा इस समय सुखपर्याय है। तो वहाँ केवल ऋजुसूत्रनय समयवर्ती सुख पर्यायको ही सूचित कर रहा हैं। यद्यपि जिस समय सुख पर्यायका बोध हो रहा है उस समय भी द्रव्यमें द्रव्यत्व है अथवा सदैव ही द्रव्यपना तो रहता ही है उस वस्तुमें लेकिन द्रव्य सत् होने पर भी उसकी यहाँ विवक्षा नही है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान परिणमनमात्रको ही ग्रहण करता है अतएव इस नयकी दृष्टिमें द्रव्य नही है। द्रव्य होनेपर भी उसकी विवक्षा नही है इसी प्रकार उस द्रव्यमें, उस वस्तुमें अतीतके परिणमन और भी हैं। भविष्यके परिणमन भविष्यमें होंगे, अतीतके परिणमन हो चुके, ऐसी अतीत और अनागत पर्यायें भी हैं, लेकिन अतीत पर्याय तो निवष्ट हो चुकी, अनागत पर्याय अभी हुई नही है, आगे होगी, इस कारणसे वर्तमान कालमें अतीत और अनागत क्षण भी असम्भव हैं, उनकी विवक्षा न होनेसे। यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि वर्तमान समयमात्र पर्यायको ग्रहण करनेसे तो लोक व्यवहारका लोप होजायगा, क्योंकि लोकव्यवहार भूत भविष्यत् सब तरहके शब्दोंको बोलता है। उत्तरमें कहते हैं कि लोक व्यवहारका लोप यों नही हो सकता कि लोकव्यवहार तो समस्त नयसमूहोंके द्वारा साध्य है। यहाँ तो नयोंका विषयमात्र बताया जा रहा है कि ऋजुनयका विषय वर्तमान समयवर्ती परिणामको ग्रहण करनेका है। जब लोकव्यवहारकी बात होगी तो उसमें ऋजुसूत्रनय भी आता है तो सभी नयोंके आश्रयसे लोकव्यवहार बनता है।

निराकृतप्रतिपक्ष ऋजुसूत्रमें ऋजुसूत्राभासता—यहाँ जो विषय बताया जा रहा कि ऋजुसूत्र याने शुद्ध पर्यायको ग्रहण किया। शुद्ध पर्यायके मायने यहां केवल पर्यायार्थिकनय, द्रव्यकी विवक्षा न रखकर, केवल वर्तमान पर्यायभूत भविष्यकी पर्यायका भी सम्बन्ध न बनाकर केवल वर्तमान पर्यायको ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्र नय है किन्तु इस प्रसंगकी आड़ लेकर कोई बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग द्रव्यका सवथा निराकरण करता है अर्थात् द्रव्यपनेको स्वीकार नहीं करता। ऋजुसूत्रनयके विषयभूत वर्तमान पर्यायमात्रको ही सर्वस्व समझता है, क्योंकि समस्त पदार्थ प्रतिक्षण क्षणिक हैं ऐसा अनुमान हुआ है उनकी मुख्यता हुई है। कोई भी पदार्थ दूसरे समय नही रहता ऐसी पदार्थोंकी सर्वथा क्षणिकता माननेके कारण जो द्रव्यका निराकरण करता है ऐसा जो अभिप्राय है वह तो ऋजुसूत्रनयाभास है। ऋजुसूत्र नही कहा जा सकता, क्योंकि प्रतीति तो इस तरहकी नहो होती। द्रव्यको छोड़कर पर्याय होता ही नही। केवल पर्यायमात्र ही वस्तु हो ऐसी प्रतीति नही होती, क्योंकि प्रत्यभिज्ञान आदिकसे बाह्य और अन्त: एक द्रव्यकी प्रतीति बराबर होती है। बाह्य द्रव्यसे मतलब हुआ कि कुछ लोकव्यवहारमें द्रव्य माना जाता है, पर्याय संततिमें जो एक द्रव्य पिण्ड की कल्पना होती है। अथवा जैसे मनुष्य ५० वर्ष जीवित है तो ५० वर्ष तककी जो

http://sahjanandvarnishastra.org/

मनुष्य पर्याय है वह एक द्रव्यरूपसे निरख ली गई है। यों बाह्य द्रव्य हुआ। अन्तः द्रव्य पुद्गलमें परमाणु और देहियोंमें ज्ञानस्वभावमय आत्मा जो कि शाश्वत है ये दोनों प्रकारके द्रव्य प्रत्यभिज्ञान प्रमाण आदिक द्वारा जाने जाते हैं। जो द्रव्य पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायमें रहने वाला है ऐसे पूर्वोत्तर पर्यायवर्ती द्रव्यको प्रत्यभिज्ञान सिद्ध करते हैं। जिनमें कि कोई बाधा नहीं, पदर्थ सामान्यविशेषात्मक होते। जब नाना पदार्थोंपर दृष्टिपात करते हैं तो नाना पदार्थों सम्बन्धी सामान्य, तिर्यक सामान्य कहलाता है और नाना पदार्थोंमें जो परस्पर विशेष है, भेद है वह तिर्यक विशेष कहलाता है। और, जब केवल एक ही वस्तुके सम्बन्धमें उस वस्तुकी भूत भविष्यत् पर्यायोंमें रहने वाले शाश्वत् भावको देखा जाता है तो उसे ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। और उस ही एक पदार्थके पूर्वोत्तर समस्त पर्यायोंपर दृष्टि करते हैं तो ऊर्ध्वताविशेष कहलाता है ऊर्ध्वता सामान्यकी सिद्धिसे भी यह बात सिद्ध होती है कि शाश्वत द्रव्य होता है। तो जो पुरुष उस द्रव्यका निराकरण करते हैं और ऋजुसूत्रनयके विषयभूत केवल वर्तमान पर्यायमात्रको स्वीकार करते हैं उनका यह अभिप्राय ऋजुसूत्राभास है। पदार्थ प्रतिक्षण क्षणिक हैं, यह बात प्रमाणसे सिद्ध नहीं होती। तब निष्कर्ष यह निकला कि अपने प्रतिपक्ष द्रव्यत्वकी अपेक्षा रखकर जो वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्र है वह तो ऋजुसूत्रनय है और द्रव्यका निराकरण करते हुए एकान्ततः केवल वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करने वाला अभिप्राय ऋजुसूत्राभास है।

शब्दनयका परिचय – अब पर्यायार्थिकनयमें द्वितीय भेद शब्दनयका वर्णन करते हैं। ऋजुसूत्रनयमें एक पर्यायको किन्हीं शब्दों द्वारा किन्हीं भी पद्धतियोंसे ग्रहण करनेकी बात की थी। अब उस विषयमेंसे संक्षिप्त विषय करके यह शब्द नय काल, कारक, लिंग, संख्या, साधन, उपसर्गके भेदसे भिन्न अर्थको ग्रहण करता है, इस हीको शब्दनय कहते हैं। शब्दकी व्युत्पत्ति यह है— शपति इति शब्दः' जो वर्णन करे, कहे उसे शब्द कहते हैं। तो शब्दनयमें शब्द प्रधान है। शब्दके भेदसे भिन्न अर्थको ग्रहण करना यह शब्दनयका काम है। और, इसके बाद भी जो जो नय आयेंगे –समभिरूढ नय एवं भूतनय ये भी शब्दनयसे सम्बन्धित हैं अर्थात् शब्दका आश्रय रखकर अर्थको बताने वाला नय। यह शब्दनय एव भूत और समभिरूढनयसे बड़ा विषय रखने वाला शब्दनय काल भेदसे भिन्न अर्थको स्वीकार करता है।

शब्दनयकी दृष्टिमें कालभेदसे अर्थभेदका निर्णय – शब्दनयके विरुद्ध याने लिङ्गभेदसे अर्थभेद न माननेको वैयाकरणोंका मत है। जैसे कि पाणिनीय व्याकरणमें एक सूत्र आया है—'धातुसम्बन्धे प्रत्ययः' यह एक अधिकारसूत्र है। इस सूत्रका आरम्भ करके अनेक सूत्र और आते गए और इस प्रसंगमें अन्तिम सूत्र है—विश्वदृश्वास्य पुत्रो भविता। यहाँ तक कालभेद होनेपर भी एक पदार्थको बताया है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वैयाकरणोंने । जैसे इसका पुत्र विश्वदृश्वा होगा । यहाँ विश्वदृश्वाका अर्थ है समस्त विश्वको देख चुकने वाला । तो विश्वदृश्वा शब्दका अर्थ अतीतकाल सम्बन्धित है । जो समस्त विश्वको जान चुका वह विश्वदृश्वा है । और, प्रयोग यों किया जा रहा है कि इसका विश्वदृश्वा पुत्र होगा । बात तो कह रहे हैं होगा, भविष्यकालमें होगा और जिस पुत्रके भविष्यकालमें होनेकी बात की जा रही है उसके बारेमें विशेषण दे दिया है यह कि सारे संसारको जान चुकने वाला । तो विशेषण तो अतीत कालसे सम्बन्ध रखता है, जो समस्त विश्वको जान चुका है और उसको कह रहे हैं कि होगा । तो यहाँ अतीत वाला और भविष्यकालके भिन्न दो अर्थोंको एक साथ जोड़ दिया है, अभेद कर दिया है । ऋजुसूत्रनयके विषयमें भी और संक्षिप्त विषय करके शब्द नय जाना करता है । तो यहाँ अतीत कालका अर्थ और भविष्य कालका अर्थ इन दोनोंको शब्दनय एक रूप स्वीकार नहीं कर सकता है । वैयाकरणोंने तो इस भिन्न अर्थ वाले अतीत काल और भविष्यकालके अर्थ वाले प्रयोगका इस तरहसे निष्कर्ष निकालकर बताया है कि जो समस्त विश्वको देखेगा, ऐसा इसका पुत्र होगा, लेकिन विश्वदृश्वा शब्दमें भविष्यकाल परक अर्थ नहीं है । उसका अर्थ अतीत सम्बन्धित है । तो ऋजुसूत्र-नय इस अभेद अर्थको ग्रहण नहीं करता, क्योंकि भविष्यकालके साथ अतीत कालका अभेद नहीं है, पर उस प्रयोगमें भविष्यकालके साथ अतीत कालका अभेद बनाया गया है और व्यवहार भी इसी तरहसे पाया जाता है, और यों कहते भी हैं कि इसका सर्वज्ञ पुत्र होगा । इसका ऐसा पुत्र होगा जो कि सर्वज्ञ होगा । तो सर्वज्ञका भी अर्थ क्या है ? जो समस्त विश्वको जान चुके जो समस्त विश्वको जाने उसे सर्वज्ञ कहते हैं । तो व्यवहारमें तो यह बात पायी जाती है कि इसके विश्वदृश्वा पुत्र होगा । अतीत कालके अर्थ को भविष्यकालके अर्थके साथ जोड़ देनेकी बात व्यवहारमें पायी तो जाती है लेकिन यह शब्दनयकी दृष्टिमें असंगत बात है, क्योंकि शब्दनय कालभेदसे अर्थके भेदको स्वीकार करता है ।

कालभेद होनेपर भी सर्वथा अर्थका अभेद माननेपर दोषापत्ति—यदि सर्वथा कालका अभेद होनेपर भी अर्थका अभेद कर दिया जाय तो फिर इसमें अति-प्रसंग होगा । जैसे कि रावणके शंखका शब्द, यह अतीत हो चुका है । जब रावण हुआ तब उसने शंखनाद किया, जब उसका वह शब्द था और चक्रवर्तीका शब्द जो भी शब्द होगा वह भविष्यकालका शब्द है । तो रावण शंख शब्दमें और चक्रवर्ती शब्दमें भी एकार्थकता आ जानी चाहिये । क्योंकि अब तो कालभेदसे अर्थका अभेद माना जाने लगा ना । तो रावण शंख शब्द अतीतकालका था चक्रवर्ती शब्द अनागत कालमें होगा लेकिन अब तो अतीत और अनागत अर्थको एक मान लिया गया । तब इन दोनोंमें भी एकार्थकता आ जानी चाहिए । यदि कहो कि इन दोनों नयोंमें भिन्न विषयपना है रावण शंख शब्दमें और चक्रवर्ती शब्दमें । रावण शंख शब्द अलग बात है चक्रवर्ती शब्द प्रथक चीज है । इसलिये एकार्थपन नहीं आ सकता । तो समाधानमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहते कि तब तो इसी कारणसे अतीत कालका भविष्य विषय भिन्न है। तो विश्वदृश्वा होगा, सर्वज्ञ होगा, इसमें भी एकार्थकता न आनी चाहिए। क्योंकि विश्वदृश्वाका विषय दूसरा है। सारे विश्वको जो जान चुका उसे विश्वदृश्वा कहते हैं और भविता का अर्थ दूसरा है। जो होगा उसे भविता कहते हैं। तो यहाँ भी भिन्न विषय बन गया। इस कारण इन दोनोंमें भी एकार्थकता न बनेगी अर्थात् यह प्रयोग असिद्ध रहेगा, क्योंकि विश्वदृश्वाका अर्थ तो यह है कि जो समस्त विश्वको देख चुका। अब यह अर्थ तो अतीतकाल सम्बन्धी है। अब उस हीको कहते कि "भविता" मायने आगे मानना होगा। भविता इस शब्दका अर्थ अनागतकाल वाला है, भविष्यमें होगा। तो भला जो आगे होगा पुत्र उसमें अतीतपनेकी बात जोड़ना कैसे अविरुद्ध हो सकता है? भावी चीजमें अतीतपनेका विरोध देखा जा रहा है। इस कारण रावण शख शब्द व चक्रवर्ती शब्दकी तरह यहाँ भी अर्थभेद मानिये शब्दनयसे। यदि कहो कि अतीतकालमें भी अनागतपनेका अध्यारोप कर दिया जायगा और एकार्थता मान ली जावेगी याने अतीतकालमें भविष्यकालपनेका आरोप करके फिर उसमें एकार्थपना मान ली जावेगी। तो उत्तरमें कहते हैं कि भले ही अतीतकालकी बातमें अनागतपनेका उपचार करके या भविष्यकालकी बातमें अतीतकालपनेका उपचार करके एकार्थपना मान लिया जाय, लेकिन परमार्थसे तो यह बात सिद्ध न होगी। अभिन्न अर्थकी व्यवस्था न बन सकी। क्योंकि काल भेदसे अर्थ भिन्न ही होगा। उपचारसे काल भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थकी व्यवस्था बना ली जाय तो इससे परमार्थसे तो कालभेद होनेपर अभिन्न अर्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती। यों कालके भेदसे भिन्न अर्थको ग्रहण करने वाला यह शब्दनय है।

शब्दनयमें कारक भेदसे अर्थ भेदकी प्रतिपादकता—शब्दनय कारक भेद से भी भिन्न अर्थका प्रतिपादन करता है। जैसे करोति और क्रियते। यहाँ करोति तो है कर्तृकारकका प्रयोग और क्रियते हैं कर्मकारकका प्रयोग, तो इस प्रकार कर्तृकारक और कर्मकारकके भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थको वैयाकारण लोग मानते हैं। जैसे कि जो कुछ करता है, किसीके द्वारा वह किया जाता है इस प्रकारकी प्रतीति होती है। समाधानमें कहते हैं कि वैयाकरणोंका इस प्रकार कर्ता कर्म कारकका भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थ मानना सब अयुक्त हैं अन्यथा याने कर्ताकारक और कर्म कारकका भेद होनेपर भी अर्थ यदि एक मान लिया गया तो जब यह प्रयोग होता है कि देवदत्त चटाईको करता है तो यहां कर्ता तो है देवदत्त और चटाई है कर्म। कर्ता कर्म कारक का भेद होनेपर भी मान लिया वैयाकरणोने एक अभिन्न अर्थ तो यहाँ भी कर्ता देवदत्त कर्म चटाई ये दो भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन इनमें भी अभेद बन बैठेगा क्योंकि अब तो यहाँ यह नियम बना दिया कि कर्ता और कर्म कारकमें भेद होनेपर भी एक ही अभिन्न अर्थ है तो यों अत्यन्त भिन्न पदार्थ जिनका कभी एक अर्थ होता ही नहीं, कर्ता और कर्म कारकका प्रयोगभेद हो जानेपर भी वे एक बन बैठें। इससे शब्दनयकी दृष्टिमें कर्तृ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारक और कर्म कारकका भेद होनेपर उन्हें भिन्न अर्थमें ही बतलाता है।

शब्दनयमें लिङ्ग भेदसे अर्थ भेदकी प्रतिपादकता—शब्दनय लिङ्गके भेद से भी भिन्न अर्थको ही बताते हैं। जैसे पुष्य और तारका ये दो शब्द हैं। इनमें पुष्य है पुलिङ्ग और तारका है स्त्री लिङ्ग। तो यहाँ लिङ्गका भेद होनेपर भी एक ही नक्षत्र अर्थ वैयाकरण लोगोंने माना है। और, ऐसा ही लोक व्यवहारमें देखा जाता है। इस युक्तिसे वैयाकरण लोग लिङ्गभेद होनेपर भी अर्थभेद नही मानते, किन्तु अभिन्न अर्थ मानते हैं यह भी बात शब्दनयकी दृष्टिमें असंगत है। शब्दनय शब्दकी विशेषतापर दृष्टि देता है। तो लिङ्गभेद होनेपर भी यदि एक ही अर्थ उसका विषय मान लिया तब तो पट: और कुटी इन दो शब्दोंमें भी एकत्वका प्रसंग आ जायगा। पट मायने तो कपड़ा है और कुटी मायने झोंपड़ी है, कितना भिन्न अर्थ हैं? कहाँ तो कपड़ा और कहाँ झोंपड़ी? लेकिन जब आग्रह ठान लिया कि लिङ्गभेद होनेपर भी अर्थ एक रहता है, तो यहां भी लिङ्गभेद है। पट शब्द पुंलिङ्ग है और कुटी शब्द स्त्रीलिङ्ग है, तो इसका भी ठीक अभेद अर्थ हो बैठेगा? इस कारण शब्दनयकी दृष्टिमें लिङ्गभेद होनेसे भिन्न अर्थका ही ज्ञापन होता है। शब्दनय शब्दकी विशेषता पर कड़ी दृष्टि रखता है।

शब्दनयकी दृष्टिमें वचनभेदसे (संख्याभेदसे) अर्थभेद—शब्दनय संख्या के भेदसे भी पदार्थोंमें भेद मानता है। जैसे प्रयोग किया गया आप: अम्भ:। आप: यह बहु वचनान्त शब्द है। तो आप: में बहु वचन आया, इसकी संख्या बहुत हुई और अम्भ: में एक वचन आया। तो वचनका भेद होनेपर भी वैयाकरणजन एक जल नाम का अर्थ ही उसका वाच्य मानते हैं। उनका कथन है कि संख्याका भेद पदार्थका भेदक नही होता है। जैसे कोई एक किस्मके ही अनेक पदार्थ रखे हैं, मानो गेहूंका ढेर लगा है, और उनमें अनेक गेहूँ कम वजनके हैं कुछ विशेष वजनके हैं। होते ही हैं ऐसे तो उस ढेरके गेहूँओंमें गुरु लघुका भेद है, पर ऐसा भेद होनेसे वह भिन्न अर्थ नही कहलाता है तो वह गेहूँ ही एक। तो यों ही जब वचनके भेदसे संख्याभेद हो तो भी वह एक ही अर्थ कहलाता है। शब्दनयकी दृष्टिमें यह बात भी अयुक्त है। यदि संख्याभेद होनेपर भी पदार्थोंमें अभेद मान लिया जाता है तो जैसे प्रयोग किया पट: तंतव: तो पट: यह प्रयोग तो है एक वचनका व तंतव: यह प्रयोग है बहुवचनका। पट मायने कपड़ा और तंतव: मायने अनेक सूत। अब वचनके भेदसे अर्थ एक मान लिया तो पट और तंतु भी एक ही बन जांय। इससे शब्दनयकी दृष्टिमें यह सिद्ध होता है कि संख्याके भेदसे पदार्थ भिन्न–भिन्न कहलाते हैं।

शब्दनयकी दृष्टिमें साधनभेदसे अर्थका भेद—शब्दनय साधनके भेदसे भी भिन्न भिन्न अर्थको ग्रहण करता है। वैयाकरण इस सम्बन्धमें यह कहता है कि जैसे प्रहासके समय एक वाक्य बोला किसीने कि "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता" तो यह साधनका भेद है फिर भी वैयाकरण लोग अर्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभेद मानते हैं व्याकरणका सूत्र भी अभेदसाधक है 'प्रहासे मन्यवाचि युष्मन्मन्यतेऽस्मदेकवच्च'' एक यह व्याकरणका सूत्र है जिस सूत्रसे प्रहासके प्रसंगमें और माननेके वाच्य में युष्मत् और अस्मत् शब्द एक समान हो जाते हैं। किसीके स्थानमें कुछ भी प्रयोग करलो तो उस प्रहास वाक्यमें यह कहा कि जावो तुम समझते हो कि रथसे जाऊंगा नहीं जावोगे, तेरे पिता भी गए, इस प्रकारका कोई हास्य वाक्य बोले तो इस वचनमें युस्मद्‌की जगह अस्मत् और अस्मत्‌की जगह युष्मदका प्रयोग किया गया है यह साधन का भेद है। और उस स्थानका भेद होनेपर भी यह एक अर्थ माना गया है वैयाकरणों द्वारा शब्दनयकी दृष्टिमें समाधान कर रहे हैं कि यह बात भी असंगत है। यदि साधन भेद होनेपर भी एकर्थता मान ली जाती है तो अहं पचामि त्वं पचसि, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं पचाता हूँ। तुम पचाते हो, यहाँपर भी एक अर्थका प्रसंग हो जायगा। पर क्या एक अर्थ है ? मैं पकाऊं इसका भाव दूसरा है। तुम पकाते हो इसका भाव दूसरा है तो शब्दनयकी दृष्टिसे साधन भेदसे अर्थ भिन्न भिन्न हो जाता है।

शब्दनयकी दृष्टिमें उपसर्गभेदसे अर्थभेद—उपसर्गके भेदसे भी अर्थ भिन्न भिन्न हो जाता है शब्दनयकी दृष्टिमें। जैसे संतिष्ठते और प्रतिष्ठिते। इन दो धातुवों का प्रयोग उपसर्गके सम्बन्धमें है तो यहाँ उपसर्गके दो भेद होनेपर भी वैयाकरण लोग अर्थका भेद मानते हैं और उनके सिद्धान्तसे यह भाव आता है कि उपसर्ग तो धातुका अर्थ मानकर प्रकाश किया करता है इसलिए धातुके साथ उपसर्ग भी लग जाय तो भी वही अर्थ है जो धातुका है। किन्तु शब्दनयकी दृष्टिसे यह बात असंगत बैठती है। उपसर्गके लगनेका अर्थ कहीं-कहीं तो स्पष्ट भेद नजर आता है। जैसे प्रहार, उपहार—इनमें उपसर्ग भिन्न-भिन्न हैं। प्रहारमें प्र उपसर्ग लगा, उपहारमें उप उपसर्ग लगा, और इस उपसर्गके लगनेसे प्रहारका अर्थ तो चोट पहुँचाना है और उपहारका अर्थ भेंट करना है। यदि उपसर्गका भेद होनेपर भी अर्थ अभिन्न माना जाय तो इसका भी अर्थ एक बन जाय, पर इनका अर्थ एक तो नहीं है। अतः उपसर्गभेदसे भी अर्थमें भेद हो जाता है शब्दनयकी दृष्टिमें।

शब्दनयमें कालादिभेदसे अर्थभेदका निर्णय—उक्त विवरणसे यह ही निर्णय मानना चाहिए कि काल आदिकके भेदसे शब्दका अर्थ भिन्न ही होता है। इस सम्बन्धमें यह अनुमान प्रयोग भी है कि विभिन्न काल आदिक सम्बन्धित शब्द विभिन्न अर्थके प्रतिपादक होते हैं क्योंकि विभिन्न काल आदिक वाले अन्य शब्द भिन्न अर्थका ही प्रतिपादन करते हैं रावण शंख शब्द, चक्रवर्ती शब्द ये विभिन्न कालके शब्द हैं ना, रावण शंख शब्द अतीत है। चक्रवर्ती शब्द अनागत है अथवा रावणसे पहिले जो चक्रवर्ती हुए उनके शब्द अतीत हैं। उसकी अपेक्षा रावण शंखका शब्द भविष्य है तो उन दोनोंमें भी एकार्थपना आ जायगा। यदि भिन्न अर्थका प्रतिपादक न माना जाय उन शब्दोंको तो उनके अभेदका प्रसंग होगा पर अभेद तो नही रावण शंख शब्द अलग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, चक्रवर्ती शब्द अलग है। ये भी विभिन्न काल आदिकसे सम्बन्धित शब्द हैं। जो विश्वको जान चुका उसे विश्वदृश्वा कहते हैं। और, विश्वदृश्वा पुत्र होगा, अतीत वाली बातको भविष्यके साथ वाक्यमें जोड़ रहे हैं तो ये भिन्न अर्थके हैं दोनों शब्द शब्दनयकी दृष्टिमें ऐसा जुड़ाव नही होता। अथवा यों निष्कर्ष समझिये कि ऋजुसूत्र-नयमें तो काल कारक लिंग, संख्या, साधन, उपग्रह इनका व्यभिचार चले भले ही भिन्न कारकके शब्द हो, ऋजुसूत्रनयका प्रयोजन तो वर्तमान अर्थको जता देना मात्र है, लेकिन शब्दनय उनके व्यभिचारको दूर करता है। भिन्न काल शब्दोंको अभेदरूपसे शब्दनय स्वीकार नही करता। उन्हें भिन्न भिन्न अर्थके प्रतिपादक मानता है। इसी प्रकार कारक आदिकके भेदसे उन शब्दोंका भिन्न अर्थका प्रतिपादक माना है।

शब्दनयके कारण लोकव्यवहारविलोपकी शंका और उसका समाधान

यहां कोई शंका करता है कि इस तरह तो लोकव्यवहारका विरोध हो जायगा। लोक में बराबर यही व्यवहार चल रहा। आप: बहुवचनको कहा तो उसका अर्थ है जल। अम्भ: एक वचनको कहा तो उसका अर्थ है जल। संख्याभेद है, मगर अर्थ एक ही हैं। और, इसका सर्वज्ञ पुत्र होगा। ऐसा बराबर लोकव्यवहारमें देखा जाता है। लोग तीर्थंकरको तो पहिलेसे कह देते कि अब माताके गर्भमें तीर्थंकरका जीव आ गया। तीर्थंकर तो तीर्थंकर होने वाला मनुष्य पर्यायमें भी जब भगवान बने। १३ वां गुण स्थान हो तो तीर्थंकर कहलायेगा। क्योंकि तीर्थंकर प्रकृतिका उदय भी तब आया है और धर्म प्रवृत्ति भी उनके नामसे तब चलती है। तो तीर्थंकर शब्दका प्रयोग असलमें तो जब सकल परमात्मा हो ले तब तीर्थंकर शब्दका प्रयोग होना चाहिए। लेकिन, लोग उसे तो अभीसे ही कहते हैं बहुत पहिलेसे तीर्थंकर शब्द कहते हैं। गर्भकल्याणक जन्म कल्याणक होते हैं तो कहते हैं कि तीर्थंकरके गर्भ कल्याणक जन्म कल्याणक हुआ। तो तीर्थंकर पर्याय तो भविष्यकी है मगर अतीतके साथ उसे जोड़ देते हैं। यों ही अनेक व्यवहार चलते हैं। तो उन सब व्यवहारोंका विरोध हो बैठेगा। यदि भिन्न काल आदिकके शब्दोंसे भिन्न भिन्न अर्थको ग्रहण किया जाय। उसके समाधानमें कहते है कि यदि ऋजुसूत्रनयकी बात बताते हुए लोकव्यवहार विरुद्ध होता है तो हो। यहां तो तत्त्वकी मीमांसा की जा रही है। ऋजुसूत्रनयका विषयभूत पदार्थ क्या है उसका यहां विचार किया जा रहा है। रोगीका औषधि उसकी इच्छा के अनुसार दी जाय ऐसा तो नहीं होता। जिस प्रकारसे रोगनिवृत्ति हो उस प्रकारसे वैद्य दवाई बताता है। तो यों ही लोकव्यवहारविरुद्ध हो जाता है इस कारण यों न कहना चाहिए यह को सिद्धान्तकी बात नही है कोई तत्त्व ऐसा हो है कि जिस तत्त्वके दर्शनमें लोकव्यवहार नहीं बनता तो मत बनो। किन्तु विषय तो है वह। ऋजुसूत्रनयका विषयभूत पदार्थ क्या है वह यहां बताया जा रहा है लोकव्यवहार तो समस्त नयोंके द्वारा साध्य है। तो यहां शब्दनयके विषयमें यह बताया गया है कि अगर दो शब्द भिन्न भिन्न कालकी सूचना कर रहे हों तो ऋजुसूत्रनयके प्रसंगमें भले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही उन दो शब्दोंका अर्थ एक हो जाय मगर शब्दनयकी दृष्टिमें उन दोनोंका एक अर्थ नहीं हो सकता है। शब्दनयका अभिप्राय तो शब्दकी विशेषताके अनुसार चलता है।

अर्थनयोंसे शब्दनयकी भिन्न दिशा—अब तक द्रव्यार्थिकनयके भेदमें नैगमनय संग्रहनय और व्यवहारनय कहा और पर्यायार्थिकनयके भेदमें ऋजुसूत्रनयका प्रयोग हुआ। वे चार अर्थनय कहलाते थे, वहां शब्दके भेदसे अर्थ भेदकी कल्पनाकी कोई दृष्टि न थी। जिस नयका जो वाच्य है वह बात ध्यानमें आना चाहिए। इसके लिये ही वचन प्रयोग है तो उन चार नयोंमें तो अर्थनयत्व है, वे अर्थका प्रतिपादन करते हैं, किन्तु शब्दनयमें शब्दकी प्रधानता है स्त्रीलिंग और पुलिंग वाले दो शब्द एक ही अर्थके पर्यायवाची हैं। लेकिन उनमें लिङ्ग भेद आदिक होते तो वे भी भिन्न अर्थ को ही कहने वाले हैं। अर्थकी भिन्नता थोड़ी थोड़ी दृष्टिभेदसे हो जाया करती है। तो पूर्वोक्त वे चार नय अर्थनय थे। अर्थमें जितनी सूक्ष्म सूक्ष्म बात कही जा सकती थी वह ऋजुसूत्रनयमें कह दी गई। द्रव्यार्थिकनय तो सामान्यको विषय करता है। उस का विषय विशाल है। पर्यायार्थिकनय एक समयवर्ती पर्यायको ग्रहण कर रहा है क्योंकि अनेक समयोंकी पर्यायको ग्रहण करे तो उसकी दृष्टि द्रव्य जैसी दृष्टि बन जाती है और वह द्रव्यार्थिकनयमें सामिल हो जाती है। तो एक समयवर्ती पर्याय वह भी अर्थ सम्बन्धित है। और, उसको विषय करने वाला ऋजुसूत्रनय अर्थनय कहलाता है। उसमें भी लिंगआदिकके भेदसे अर्थभेद करने वाला यह शब्दनय कहा गया है। शब्दनयकी दृष्टिसे शब्दमें जरा भी अन्तर हो लिंगका अन्तर, साधनका अन्तर, कारक अन्तर उपसर्ग सम्बन्धका अन्तर, कालका अन्तर संख्याका अन्तर तो उन अन्तरोंके कारण अर्थमें भी यहाँ भेदको सिद्ध करते हैं अर्थात् उन शब्दोंके द्वारा वाच्य अर्थ भिन्न भिन्न ही होते हैं।

द्रव्यार्थिकनयोंमें पूर्व पूर्वनयके विषयसे उत्तर उत्तरनयके विषयकी अल्प विषयता - द्रव्यार्थिक नयमें तीन नय बताये गए वे नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय। नैगनयन तो सत् और असत् नोनोंको विषय करता है। क्योंकि नैगमनय का अभिप्राय है कि संकल्प मात्रसे अर्थको ग्रहण करना। जैसे कोई ईंधन रसोईघरके लिए किए जा रहा हो उससे पूछे कि भाई क्या कर रहे हो? तो वह कहता है कि रोटी बना रहे हैं। तो असत् है रोटी और सत् है वर्तमान क्रियाका विषय संग्रहनयने केवल सत्को विषय किया। संग्रह तो किया लेकिन सत्का संग्रह किया, असत् इसका विषय नही है। सो नैगमनयके विषयसे संग्रहनयका विषय अल्प रहा संग्रहनयसे सूक्ष्म विषय है व्यवहार नयका। संग्रहनयने जितने पदार्थोंका संग्रह किया उनमेंसे भेद करके भेद रूपमें ग्रहण करना यह व्यवहारनयका काम है। ये तीन तो द्रव्यार्थिकनय हैं। जैसे सत्को संग्रहनयने एक सत् यह विषय किया तो व्यवहारनय कहता है कि सत् या तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

द्रव्यरूप है और पर्यायरूप है। तो व्यवहारनयने द्रव्यको ही विषय किया, पर्यायको भी विषय किया लेकिन यहाँ जिस पर्यायको विषय किया वह द्रव्यपद्धतिका है याने पर्यायों का समूहरूप पर्यायको ग्रहण किया। वर्तमान समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं किया। तो जब अतीत अनागत वर्तमान समस्त पर्यायोंमें यह पर्याय है, यह पर्याय है इस प्रकार अनुवृत्ति रखने वाली पर्यायको ग्रहण किया तो वह द्रव्यपद्धतिसे ग्रहण किया, इस कारण यह भी व्यवहारनय है।

द्रव्यार्थिकनयसे पर्यायार्थिकनयकी अल्पविषयता एवं व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयकी सूक्ष्मविषयता तथा ऋजुसूत्रनयसे शब्दनयकी सूक्ष्मविषयता— द्रव्यार्थिकनयसे सूक्ष्मपर्यायार्थिकनयका विषय चलता है। पर्यायार्थिकनयोंमें महाविषय वाला ऋजुसूत्रनय है। पर्यायार्थिकनयके ४ भेद हैं— ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ नय और एवंभूतनय। इन चारोंमें सबसे बड़ा विषय है ऋजुसूत्रनयका। ऋजुसूत्रनय वर्तमानकी एक पर्यायको ग्रहण करता है। उसे चाहे किन्हीं शब्दोंसे बोलें उसका नियंत्रण नहीं है, लेकिन ऋजुसूत्रनयके विषयको और सूक्ष्म करके चूँकि ऋजुसूत्रनयके विषयसे और सूक्ष्म हो नहीं सकता, तब शब्दके सहारे उस ऋजुसूत्रनयके विषयको सूक्ष्म किया गया है। इस कारण यहाँ अन्तिम तीन नय शब्द नय कहलाते हैं। ऋजु सूत्रनय तो किन्हीं भी शब्दोंसे एक पर्यायको ग्रहण कर लेता था। अब कालके भेदसे, कारकके भेदसे, लिङ्गके भेदसे, साधनके भेदसे, उपसर्गके भेदसे भेद कर देना शब्दनयका काम है। जैसे ऋजुसूत्रनय कलत्र शब्दसे भी स्त्रीको ग्रहण करता है और भार्या शब्द से स्त्रीको ग्रहण करता है। कलत्र मायने भी स्त्री भार्या मायने भी स्त्री, लेकिन शब्द नय कहेगा कि भार्या शब्दका वाच्य पदार्थ दूसरा है कलत्र शब्दका वाच्य दूसरा है। तो अब ऋजुसूत्रनयसे जो ग्रहण किया था उससे सूक्ष्म विषय हुआ शब्दमें नय।

शब्दनयसे समभिरूढ़नयकी सूक्ष्मविषयता—अब शब्दनयके विषयमें और सूक्ष्म करके समभिरूढनय होता है। समभिरूढनयका लक्षण है नाना पदार्थोंका आश्रय करके किसी एक पदार्थके अभिमुख होकर रूढ़ होनेको। जैसे शब्द नयका विषय है शुद्ध एकरूप विषय अर्थात् जहाँ न लिंगका भेद हो न साधनका भेद हो, समान पर्यायवाची शब्द हो, जैसे इन्द्र शक्रः, पुरन्दरः ये तीन नाम इंद्रके हैं। इनमें न लिंग व्यभिचार है न संख्या, क्योंकि तीनों ही शब्द पुलिंग हैं तीनों ही एकवचन हैं, तीनों का कारक एक कर्ता कारक है। यों शब्दनय समान होनेसे पर्याय शब्दके भेदसे यहाँ अर्थभेदको ग्रहण नहीं करता है, लेकिन समभिरूढनय कहता है कि इन्द्र, शक्र, पुरन्दर इत्यादिक शब्द विभिन्न अर्थको विषय करने वाले हैं। जो ऐश्वर्यशाली है वह इंद्र है, जो शक्तिशाली है वह शक्र है, जो नगरका दरण करे वह पुरन्दर है। अथवा जो ऐश्वर्यशाली हो उसको इंद्र कहेंगे, जो शक्तिशाली हो उसे शक्र कहेंगे, जो अपने साम्राज्यके अन्तर्गत व्यवस्था करे उसे पुरन्दर कहेंगे। तो शब्दनयका विषय क्या था ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

कालादिभेदसे अव्यभिचरित अर्थको गहण करना। वह पर्याय शब्दके भेदसे अर्थभेद नही माना था, शब्दनय लिंगभेदसे अर्थभेद मानता था, कारकभेदसे अर्थभेद मानता था, लेकिन एक ही वचनसे एक ही लिंगके एक ही पदार्थके वाची अनेक शब्द हों तो भी किन्ही भी शब्दोंसे उस पदार्थको पुकारता था, किन्तु समभिरूढ़नय उनमेंसे किसी एकसे ही पुकारेगा सबसे नही। अब समभिरूढनयका अन्य प्रकारका दृष्टान्त लीजिये! जैसे गौ शब्दके तो अनेक अर्थ हैं—वाणी, किरण आदिक। लेकिन उन सभी अर्थोंको टालकर केवल एक गाय नामके पशुमें ही रूढ बन जाय शब्द तो वह समभिरूढ है। तो शब्दनयसे तो केवल काल आदिकके भेदसे अर्थभेद मानते थे, पर्याय शब्दके भेद से अर्थभेद नही माना, लेकिन समभिरूढनय पर्याय शब्दभेदसे भी अर्थभेद मानता है। जैसे इंद्र, शक्र, पुरन्दर आदिक शब्द भिन्न–भिन्न अर्थके कहने वाले हैं क्योंकि भिन्न शब्द हैं। भिन्न–भिन्न जब शब्द हैं तो उनका अर्थ भी भिन्न–भिन्न है। जैसे देखना, अवलोकना, निहारना आदिक। सामान्यतया इनके एक ही मतलब हैं, लेकिन इनमें अन्तर है। जब शब्द न्यारे–न्यारे हैं तो सूक्ष्म दृष्टिसे इनका अर्थ भी न्यारा–न्यारा है, देखना – यह सामान्य है, अवलोकना—कुछ परीक्षणसा करता हुआ देखना, इसको अवलोकना कहते हैं। निहारना—बहुतसी मिली हुई चीजोंमें किसी चिन्ह विशेषके द्वारा किसी वस्तुको छांटकर देखना इसको निहारना कहते हैं। जितने शब्द हैं उतने ही भिन्न–भिन्न अर्थ हैं। ऐसा समभिरूढनयका विषय है।

समभिरूढनयसे एवंभूतनयकी सूक्ष्मविषयता—अब समभिरूढ़नयके बाद सूक्ष्म विषय है एवंभूतनयका एवं माने इस प्रकारके विवक्षित क्रियाके परिणमन रूपसे जो परिणत पदार्थ हो, उसे जो बताये उसे एवंभूतनय कहते हैं। जैसे समाधिरूढ़ने इन्द्रका अर्थ ऐश्वर्यशाली कहा। शक्रका अर्थ शक्तिशाली कहा। लेकिन एवंभूतनय यह कहता है कि जब वह ऐश्वर्यके समारोहमें लगा हो तब वह इन्द्र है। जब वह अपनी शक्तिबल प्रयोगमें लगा हो तब वह शक्र है। जैसे एक ही पुरुषका मुनीम और पुजारी इन दोनों शब्दोंसे कहते हैं तो वह एवंभूतनयका विषय नही है। यह ऋजु-नयमें तो आ जायगा। जैसे शक्र शब्द कहा तो समभिरूढ़नयकी दृष्टिमें वह इन्द्रशक्ति प्रयोगकी क्रियामें लगा हो तो न लगा हो तो देवोंका जो राजा है शक्र, उस अर्थको बता देगा, यह है शक्र। अथवा जैसे पशु गाय गमन क्रियामें लगी हो तब, न लगी हो तब अर्थात् गाय चल रही हो तब भी गाय है समभिरूढनयकी दृष्टिमें, न चल रही हो तब भी गाय है, क्योंकि उस प्रकारकी उसमें रूढ़ि है। लेकिन एवं अभिभूतनय तो जिस समय चल रही हो गाय उस समय गाय कहेंगे। एसे ही जब शक्र जब अपनी शक्तिक्रियाके प्रयोजमें लगा हो, व्यवस्थामें शक्ति प्रदर्शन कर रहा हो जब वह शक्ति क्रियाके प्रदर्शनमें लगा हो तो उसे शक्र कहेंगे एवंभूतनयसे। जब वह पूजन कर रहा हो इन्द्र तो उसको शक्र न कहेंगे, क्योंकि पूजनमें शक्तिप्रयोगका काम नही, वहाँ तो प्रभुभक्तिका काम है। एवंभूतनयकी दृष्टिकी अपेक्षा करके भी यदि अन्य कार्यमें लगे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हुएको अन्य शब्दसे बोल दिया जाय तो जैसे इन्द्र पूजन तो कर रहा है इस समय उसे शक्र शब्दसे बोल दिया जाय तो अब इसका अर्थ यह हो गया कि कोईसा भी अर्थ हो, कोई सा भी शब्द बोल दे। कर तो रहा है वह पूजन, मगर बोल रहे हैं हम शक्र तो इसको बढ़ा करके ऐसा भी कहा जा सकता कि कोई कर तो रहा नमस्कार, किंतु अब नमस्कार करते हुए पुरुषमें रसोइयापन आ जाय। जैसे वही पुरुष वाचक है, वही पुरुष पूजक है तो अब वह पूजन कर रहा है तो उसमें पाचकत्व आ जाय याने रसोई पकानेकी बात बन जाय, यह प्रसंग इतना ही दोष नही दे रहा कि उसे जिस समय पूजा कर रहा है उस समय पाचक कहदे, यह भी दोष है, लेकिन इससे बढ़कर दोष यह कहा जा रहा है कि काम तो कर रहा है नमस्कारका और बात बन जाय पाचकत्वकी, तो एवंभूतनय न माना जाय तो व्यवहार बिगड़ जायगा।

एवंभूतनयकी उपयोगिता—इस प्रसंगमें जब ऋजुसूत्रनयका लक्षण किया जारहा था कि ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान एक क्षणकी पर्यायको ग्रहण करता है तो वहाँ प्रश्न यह किया गया कि द्रव्यको तो ऋजुसूत्रनय ग्रहण करता नही और भूत भविष्य पर्यायको भी ग्रहण नही करता, तब लोकव्यवहार केवल वर्तमान क्षणमात्रकी पर्यायको ग्रहण करनेसे हो नही सकता। जब द्रव्यदृष्टि भी हो, भूत भविष्यकी पर्यायों पर भी निगाह हो तब व्यवहार बन सकेगा। तो शंका यह उठाई गई थी कि वर्तमान पर्यायमात्रको ऋजुसूत्रनयका विषय मान लेनेपर फिर तो व्यवहारका लोप हो जायगा तो उत्तर यह दिया था उस ऋजुसूत्रनयका क्या विषय है? वह यहां बताया जा रहा है। चाहे व्यवहारनयका लोप होता हो तो होओ, किन्तु विषयमात्र प्रदर्शित किया जा रहा है, साथ ही यह भी तो जानना चाहिये कि व्यवहार समस्त नयोंके द्वारा साध्य है। केवल एक हठसे व्यवहार नही बनता। जब सब नयों द्वारा व्यवहार साध्य है तब जिनसे व्यवहार नही बन रहेकी शंका की गई किसी दृष्टिमें, उन नयोंकी भी व्यवहारमें उपयोगिता है। तब देखिये ना, कि एवंभूतनय यह कहता है कि जिस शब्दका जो अर्थ है उस क्रियामें वह परिणति कर रहा हो तब उसे उस शब्दसे बोलें, अगर कामके विरुद्ध बोलेंगे तो कर रहा है कुछ काम और बन बैठेगा कुछ काम। इस कारण एवंभूतनय, समभिरूढ़नय सामान्यके विषयको भी सूक्ष्म विषयसे ग्रहण करता है।

एवंभूतनयके अभिप्रायमें सभी शब्दोंमें अक्रियाशब्दत्वका अभाव—अब एवंभूतनयके सम्बन्धमें एक विशेष बातपर और विचार किया जा रहा है। एवंभूतनयके अभिप्रायसे दुनियाका कोई शब्द ऐसा नही जिस शब्दमें क्रिया न भरी हो। कोई भी अक्रिया शब्द नही है एवंभूतनयकी दृष्टिसे। सब शब्दोंका निर्माण है व्याकरणके अनुसार धातुसे निर्माण हुआ है सभी शब्दोंका। अंग्रेजीमें कुछ शब्द तो ऐसे होवेंगे कि जिन शब्दोंकी जड़ धातु नही है प्राय: वहाँ भी धातुसे उत्पन्न हुए शब्द हैं। जैसे Reccivcr आदिक शब्द हैं जहाँ धातुमें प्रत्यय लगा देनेसे शब्द बन जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किन्तु संस्कृतमें कोई शब्द ऐसा न मिलेगा जो शब्द धातुसे न बना हो। जैसे बोला गो तो गोमें भी क्रियाकी धुन है जो चले सो गौ, जो जाये सो गौ। अश्वका अर्थ है घोड़ा। अश्वका अर्थ जो बहुत तेज चले। शुक्ल मायने सफेद। अब कुछ लोग सोच सकते हैं कि इसमें कौन सी धातु है। और, इसमें कौन सी क्रिया की ? तो शुक्लका अर्थ है शुचिभवनात् शुक्ल:, जो पवित्र, स्वच्छ होवे उसे शुक्ल कहते हैं। तो इसमें भी क्रिया आ गई। नीला शब्द यह स्वयं क्रियाभूत है. नीलन सम्बंधसे नील बना। जिसे हम नील रंग कहते हैं उस रूप अपना रूप रखनेसे नील है। क्रिया इसमें भी आ गई। कोई पूछे कि किसीका नाम देवदत्त रख दिया तो इसमें कौन सी क्रिया आ गई ? तो इसमें भी क्रिया है। देव जिसको देवे उसे देवदत्त कहते हैं। यज्ञदत्त कहा तो इसमें कौनसी क्रिया है ? यज्ञमें जिसे दिया जाय उसे यज्ञदत्त कहते हैं। घट कहा तो घट मायने घड़ा, इसमें कौनसी क्रिया है ? घटनात् घट: घटन क्रियासे जो होवे उसे घट कहते हैं। कुम्हार चाकपर मृतपिण्ड रखता है और उसे फिर घड़ता है। कमंडल कहा इसमें कौन सी क्रिया ध्वनित है ? कं मंडले यस्मि न् इति कमंडलु:, क मायने जल, जिसमें जल बड़ी शोभारूपसे रहे उसे कमंडलु कहते हैं। चौकी कहा तो इसमें कौनसी क्रिया ध्वनित हुई ? जो चार कोनों रूपसे बर्तन करे उसे चौकी कहते हैं। प्रत्येक शब्द में क्रिया पड़ी हुई हैं। एवं भूतनयइस बातपर दृष्टि दिलाता है कि हम किसी शब्दको तब बोलें जब उस शब्दका नाम उस पदार्थ हो रहा हो। इसी प्रकार संयोगी द्रव्य और समवायी द्रव्य शब्द यह भी क्रिया शब्द है। जैसें किसीने कहा दंडी तो दंडीका अर्थ है डंडा वाला। कोई पूछे कि दंडी शब्दमें कौन सी क्रिया ध्वनित हो रही है तो सुनो ! जिसके पास डंडा उसे डंडी कहते हैं। है खुद एक क्रिया है, एक विशेषणको "है" से जोड़ करके दंडी बनाया तो उसमें भी क्रिया शब्द है। विषाणी—विषाण कहते हैं सींगको और विषाणी कहते हैं सींग वालेको। तो विषाणीमें कौन सी क्रिया ध्वनित हुई ? विषाण जिसके हों उसे विषाणी कहते हैं।

स्वेच्छसम्बन्धवाचक शब्दकी व्यवहार मात्रसे प्रवृत्ति होनेके कारण क्रियाशब्दत्व अन्वेषणकी शब्दोंमें अनुद्भूति – कुछ शब्द ऐसे हैं कि जाति गुण क्रिया आदिकका प्रयोजन रखकर सम्बन्ध बनाने वाले शब्द हैं, वहाँ परिणति व्यवहार मात्रसे है निश्चयसे नहीं है। इसका उदाहरण ऐसा है कि जिस रूढ़िमें जितने गालियों के शब्द हैं वे सब प्रसंसावाचक हैं। जो शुद्ध गाली है अर्थात् एक शब्द वाली गाली है उसका अर्थ उत्तम निकलेगा। लेकिन कोई दो चार शब्द बोलकर माँ बहिन आदिके नाम देकर गाली दे तो वह सही गाली नहीं है जो एक शब्द वाली गाली है उसमें अर्थ उत्तम निकलेगा। पहिले तो गाली शब्दका ही अर्थ समझ लीजिए। गाली, इसने मेरी कीर्ति गाली। तो गाली कहते हैं प्रशंसा करनेकी घटनाको। जब गाली शब्दका स्वयं अर्थ प्रशंसा है तब फिर जिन शब्दोंके द्वारा गाली दी जाती है वह क्यों न ऊँचा शब्द होगा ? जैसे किसीने कहा उचक्का। तो इसमें शुद्ध शब्द है उचक्का जो सबसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऊँचा पुरुष हो उसे उचक्का कहते हैं । पुंगा–पुंगव शब्दसे बना जो श्रेष्ठ हो उसे पुंगा कहते हैं । तो जो मिला जुला करके गालीके शब्द हैं वे तो केवल व्यवहार मात्र हैं और जो मूलभूत हैं वे समभिये निश्चयसे गाली हैं यहाँ निश्चय और व्यवहारका अर्थ है Pure और Ompure तो ऐसे शब्द पञ्चतथी आदिक हैं जो व्यवहार मात्रसे उन सबकी प्रवृत्ति है, निश्चयसे उनकी प्रवृत्ति नही है ।

नयोंमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका कथन तथा अर्थनय व शब्दनयका विभाग— नैगम, संग्रय, व्यवहार, ऋजुसूत्र शब्दनय समभिरूढ़नय एवं भूतनय अगर ये सापेक्ष हो अन्य नयोंके विषयकी अपेक्षा रखते हों, तो समीचीन है । परस्पर नयोंकी अपेक्षा न रखें ये नय तो ये मिथ्या हैं । नयोंमें एकमें दो नही समा सकते । जिस नय की दृष्टिमें जो बात है उस दृष्टिमें वही दृष्ट है, लेकिन उस दृष्टिको जो पुरुष कर रहा है उस पुरुषके आशयमें यदि अन्य नयोंकी अपेक्षा है तो यह नय सम्यक है, सही है और एक दूसरेकी अपेक्षा नही करता है तो यह नय मिथ्यानय है । तो इन चार नयों में ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवं भूतनय । इनमें पर्यायका अवलोकन प्रधान है और नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसुत्रनय इनमें द्रव्यका अवलोकन प्रधान है , किन्तु अर्थके नातेसे नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, और ऋजुसूत्रनय ये चार नय एक ओर है और शब्दके नाते शब्दनय समभिरूढनय, एवंभूत नय ये एक ओर है नैगमनयसे ऋजुसूत्रनय पर्यन्त नय किसी अर्थको विषय करते हैं इनमें शब्दकी प्रधानता नही है इसलिए वे चार अर्थनय कहलाते हैं । और, शब्द समभिरूढ़ एवं भूतनय इनमें शब्दकी प्रधानता है इस कारणसे ये शब्दनय कहलाते हैं ।

नयोंकी प्रकारपद्धतिका विशेष वर्णन— अब एक दृष्टि यह है कि नयोंके प्रयोग उपयोग तीन प्रकारमें होते हैं–ज्ञान अर्थ और शब्द जैसे चौकी कहा तो चौकीमें तीन बातें आ गयी ज्ञान चौकी, अर्थ चौकी और शब्द चौकी । शब्द चौकी तो चौकी ऐसे दो शब्द बोला या लिखा वह है शब्द चौकी, और जिसपर बैठे या पुस्तक आदि रखें, वह है अर्थ चौकी, और अर्थ चौकीके बारेमें जो भीतरमें ज्ञान झलका, जो विकल्प हुआ वह है ज्ञान चौकी । जैसे पुत्र तीन प्रकारके हैं– ज्ञान पुत्र अर्थ पुत्र और शब्द पुत्र पु और त्र ऐसा दो शब्द लिख दिया अथवा बोल दिया तो वह है शब्द पुत्र । और, जो दो हाथ, दो पैर वाला पुत्र है वह है अर्थ पुत्र, और उस अर्थ पुत्रके विषयमें जो ज्ञान होता है, जो विकल्प बनते हैं वह है ज्ञान पुत्र । अब यहाँ कोई पूछे कि तुम शब्द पुत्र से राग करते हो या अर्थ पुत्रसे या ज्ञानपुत्रसे तो इसका सही उत्तर क्या होगा ? ज्ञान पुत्रसे हम राग करते हैं शब्दपुत्रसे तो कोई राग करता नहीं, अर्थ पुत्र भी बिल्कुल भिन्न पदार्थ है । तो उस पुत्र के बारेमें जो हम कल्पनायें करते हैं, वह ज्ञान पुत्र है । उससे हमारा राग चलता है । तो अब इन नयोंके बारेमें हम ये तीन नय ढूंढे । यद्यपि यहाँ उस ढङ्गसे प्रयोग नहीं किया गया, किन्तु उसका आशय लेकर भेद करें तो तीन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भेद करें – ज्ञाननय, अर्थनय और शब्दनय । इनमेंसे ज्ञाननय है सिर्फ नैगमनय । नैगमनय किसी पदार्थको नही विषय करता, संकल्पमें अर्थको ग्रहण करता है । इस कारण नैगमनय ज्ञाननय है । संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, इनमें किया पदार्थ को विषय अतएव ये तीन नय कहलायेंगे अर्थनय और शब्दनय, समभिरूढ़नय, एवंभूतनय इनमें शब्दके बलपर काट छीटकी है. इनमें शब्दकी प्रधानता है, इस कारण ये कहलायेंगे शब्दनय । इस प्रकार ये ७ नय नैगमनय, संग्रहनय व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय, और एवंभूतनय । इनको एक सामान्य आगम पद्धतिसे कहा गया है । इनको अध्यात्मपद्धतिमें ढाला जाय तो भेद पद्धतिकी दृष्टि लेकर जो नय होगा वह व्यवहारनय होगा । और अभेदपद्धतिका आश्रय लेकर जो नय बना वह निश्चयनय है । तो अध्यात्म दृष्टिमें भेद और अभेद पद्धतिके प्रकारसे भेद है और इस पद्धतिमें पूर्वनयके विषय किए हुएमें ही भेद करके सूक्ष्म विषयको ग्रहण करे इस पद्धति से भेद है । यों नयोंमें तीन द्रव्यार्थिकनय हुए और चार पर्यायार्थिकनय हुए ।

नयोंकी बहुविषयता अल्पविषयता कारणभूतता व कार्यभूतताके निर्णयके प्रसंगमे नैगमनय व संग्रहनयका पारस्परिक विवरण – नयोंका वर्णन करके अब यह पूछा जा रहा है कि इन नयोंमें बहुत विषय वाला नय कौन है और अल्प विषय वाला नय कौन है ? और, उन नयोंमें कारणभूत नय कौन है और कार्यभूत नय कौन है ? इस पश्न पर उत्तर देते हैं कि पहिले पहिलेका नय तो बहु विषय है और उसके आगे आगेका नय अल्प विषय है । इसी प्रकार पहिले पहिलेका नय तो कारणभूत है और आगे आगेका नय कार्यभूत है । इसका स्पष्ट भाव यह है कि नैगमनयका बहुत विषय है उससे अल्प है संग्रहनयका, उससे अल्प है व्यवहार नय का उससे अल्प है ऋजुसूत्रनयका उससे अल्प है शब्दनयका उससे अल्प है समभिरूढ़नयका और सबसे अल्प है एवंभूतनयका तो अब नैगम और संग्रहनय इनके विषयोंपर विचार करें । नैगमनयका विषय है कम । वैसे एकदम अधिक विचार करनेपर लगता ऐसा है कि संग्रहनयसे और बड़ा विषय किसका होगा? जिसने सबका संग्रह कर लिया किन्तु संग्रहनयसे बहुत विषय है नैगमनयका क्योंकि संग्रहनय तो भाव अभाव दोनों को विषय करता है । नहीं भी वह है । भी वह जैसे कि संकल्प सत् पदार्थमें होता है वैसे संकल्प असत् पदार्थ में भी होता है । सत् पदार्थ तो विद्यमान वस्तु है उसमें भी संकल्प होता है और असत् अतीत अनागतकी वस्तु है जो वर्तमानमें नही है तो भूत भविष्य वाली चीज जो कि वर्तमानमें असत् है उसमें भी संकल्प होता है । सर्वथा असत्की बात नहीं कही जा रही, जो अप्रमेय है, असत् है, उसमें संकल्प हो यह नही कहा जा रहा किन्तु वर्तमानमें हो उसे कहते हैं सत् । वर्तमानमें नहीं है, अतीत में था, भविष्यमें होगा पर वर्तमानमें नहीं है उसे कहते हैं असत् तो जैसे सत् पदार्थमें संकल्प होता है उसी प्रकार असत् होनेपर भी संकल्प होता है, यह है नैगमनकी बा । तो अब स्पष्ट हुआ कि नैगमनय भाव और अभाव दोनोंको विषय करता है, किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संग्रहनय नैगमनयसे अल्प विषय वाला है, क्योंकि संग्रहनय नैगमनयसे अल्प विषय वाला है, क्योंकि संग्रहनय केवल सन्मात्र (सत्) को विषय करता है असत्को नहीं। इस संग्रहनयमें दृष्टि सत्के संग्रह करनेकी है। यह तो हुई नैगमनय और संग्रहनयके बीच विषयकी बात अब कारण कार्यकी बात देखिये! नैगमनयपूर्वक संग्रह नय होता है। इस पद्धतिसे नैगमनय कारणभूत हुआ और संग्रहनय कारणभूत नहीं हुआ। कारणमेंसे कार्य निकाले ऐसी लोकरूढ़ि भी है। तो नैगमनयके विषयमेंसे ही संग्रहनय निकला तो संग्रहनय कार्यभूत हुआ, नैगमनय कारणभूत हुआ।

संग्रहनय व व्यवहारनयमें तथा व्यवहारनय व ऋजुसूत्रनयमें कारणकार्यभूतता व बह्वल्पविषयताका विवरण— अब संग्रहनय और व्यवहारनयके बीचकी बात सुनो! संग्रहनय सन्मात्रका ग्राहक है और व्यवहारनय सद्विशेषका ग्राहक है। संग्रहनयसे संगृहीत सत्के भेद करके उन भेदोंका ग्रहण करनेवाला है। इस कारण संग्रहनय तो हुआ बहुविषयक और व्यवहारनय हुआ अल्पविषयक। इसी प्रकार कार्य और कारणमें भी देख लो! संग्रहनय है कारणभूत और व्यवहारनय है कार्यभूत, क्योंकि संग्रहनयके विषयको ही कारण बनाकर उसका विधिपूर्वक भाग किया गया है तो विभजन हुआ कार्य और संग्रह हुआ कारण। अब व्यवहारनय और ऋजुसूत्रनयके बीच इन दोनों प्रसंगोंकी बात देखिये, व्यवहारनयमें तो तीन कालमें रहने वाले अर्थको विषय किया था, क्योंकि व्यवहारनयकी मंशा वर्तमान परिणमनको निरखनेकी नहीं है। जैसे जीव यह हुआ संग्रहनयका विषय और जीवके दो भेद हैं—संसारी और मुक्त। तो व्यवहारनयसे संसारी व मुक्त जाना और संसार कहते ही विकार पर्यायोंका समूह आ गया फिर भी व्यवहारनयके विषयभूत उस जीव विशेषको संसारी जीवको न कहकर एक संसारी जीवत्वको ही ग्रहण किया। जो अतीत अनागत सब विकार परिणामोंमें रहने वाला संसारी जीव है यह उसका निष्कर्ष हुआ। इसकी दृष्टि केवल वर्तमानपर नहीं टिक रही। तो तो व्यवहार तो हुआ त्रिकालवर्ती अर्थका विषय करने वाला और ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान परिणमनको विषय करता है। तो बहु विषय है व्यवहारनयका और ऋजुसूत्रनयका अल्प विषय है तथा ऋजुसूत्रनय व्यवहारकपूर्वक हुआ है इसलिये व्यवहारनय कारणभूत है। और, ऋजुसूत्रनय कार्यभूत है। जैसे किसी बातकी विवेचनाका सिलसिला बनाते हैं तो जहाँसे सिलसिला उठाया वह तो हुआ कारणप्रसंग और जो उठा रहे हैं वह हुआ कार्य तो, ऋजुसूत्रनयमें जहाँ भिन्न पर्यायका बोधन कराया तो किस स्थलमें, किस आधारमें वह व्यवहारनयका विषय था। उसमेंसे सूक्ष्मका ग्रहण किया। तो यों व्यवहारनय कारणभूत हुआ और ऋजुसूत्रनय कार्यभूत हुआ।

ऋजुसूत्रनय व शब्दनयमें कारणकार्यभूतता व बह्वल्पविषयताका विवरण— अब ऋजुसूत्रनय और शब्दनयके बीचमें इन दो प्रसंगोंको देखिये ऋजु-

Version 1

सूत्रनय लिङ्ग कारक, संख्या आदिकके भेदसे अर्थमें भेद नहीं कर रहा। इसके साम्राज्यमें लिङ्ग कारक आदिकके भेदसे अर्थको अभिन्न माना जाता रहा था। यह तो ऋजुसूत्रनयका विषय है और शब्दनयके लिङ्ग कारक संख्या आदिकके भेदसे पदार्थमें भी भेद कर दिया तब ऋजुसूत्रनयसे शब्दनयका विषय सूक्ष्म हो गया, यों तो है ऋजुसूत्रनयके बहु विषयपनाकी बात और शब्दनयसे अल्पविषयपनकी बात। अब कारणत्व व कार्यत्वकी बात देखिये! ऋजुसूत्रनय है कारणभूत और शब्दनय है कार्यभूत। ऋजूसूत्रनयने जिस पदार्थको देखा उसके वाचक जितने अन्य शब्द हैं लिंग कारक आदिकके भेद वाले भी उनमेंसे अब और भेद किया तो ऋजुसूत्रनयपूर्वक ही शब्दनय बन सका। शब्दनय कहनेको चले तो उसका आधार ऋजुसूत्रनय है। उसमें ही और दृष्टि करके साधनभेद करके अर्थका भेद किया है तो ऋजुसूत्रनय हुआ कारणभूतनय और शब्दनय हुआ कार्यभूतनय।

शब्दनय व समभिरूढ़नयमें बह्वल्पविषयता व कारणकार्यभूतताका विवरण—अब शब्दनय और समभिरूढ़नयके बीचके प्रसंगोंको निरखो। शब्दनय पर्यायके भेदसे पदार्थमें भेद नही कर रहा था लिंग कारक संख्या भेदसे तो भेदकर रहा था पर पर्याय शब्दके भेदसे अर्थमें भेद नहीं कर रहा, इसका तात्पर्य यह है कि जैसे कलत्र और भार्या ये दोनों शब्दस्त्रीके वाचक हैं। तो ऋजुसूत्रनय तो इन दोनों शब्दोंमें भी भेद नहीं कर रहा और शब्दनय इन दोनोंमें भेद कर देता है, क्योंकि लिंग भेद है। शब्दनयके अभिप्रायसेजैसे भार्या, स्त्री, महिला आदि जो केवल स्त्री लिंग वाले ही शब्द हैं पर्यायवाची शब्द ये कहलाते हैं। जिनमें लिंगका फर्क न हो, कारक आदिकका अन्तर न हो औरफिर हों अनेक शब्द तो वे पर्यायवाची शब्द सही रूपसे कहलाते है। शब्दनयकी दृष्टिमें तो शब्दनय पर्यायशब्दभेदसे अर्थमें भेद नही कर रहा, लेकिन समभिरूढ़नय शब्दपर्यायभेदसे अर्थमें भेद कर डालता है। तो एक तरहसे देखो तो एक दूसरेसे विपरीत विषय है, लेकिन यह विपरीतता स्थूल और सूक्ष्मकी अपेक्षा है। यों तो शब्दनय बहुविषय हुआ और समभिरूढ़नय अल्प विषय हुआ और कारण कार्यकी बात भी स्पष्ट है। शब्दनय है। कारणभूतनय और समभिरूढ़नय, कार्यभूतनय, समभिरूढ़नयने अर्थके अभेदक उन शब्दोंमें ही तो भेद करनेकी बात है इसलिये शब्द नयपूर्वक समभिरूढ़नय हुआ है। अतः शब्दनय कारणभूतनय है और समभिरूढ़नय कार्यभूतनय है।

समभिरूढनय व एवंभूतनयमें बह्वल्पविषयता व कारणकार्यभूतताका विवरण—अब समभिरूढ़नय और एवंभूतनयके प्रसङ्गोंको देखो! समभिरूढ़नय पर्याय शब्दभेदोंसे अर्थमें भेद तो कर रहा था मगर क्रियाभेदसे अर्थमें भेद नही कर रहा था। क्रियाभेद होनेपर भी अभिन्न अर्थको ही जना रहा था। जैसे गौका अर्थ

http://www.jainkosh.org

असमभिरूढनयसे गाय है। तो गमनक्रियामें परिणत हो वह तब भी गौसमभिरूढ नयसे है और गमनक्रियामें परिणत नहीं है तब भी लोग उसे गौ कहते हैं। अब गौ शब्दके वाच्यमें एवंभूतनय क्रियाके भेदसे अर्थभेद कर डालता है। जब जाती हो तब गौ, जब न जाती हो तब गौ नहीं। तो यों समभिरूढ़नयका विषय बड़ा हो गया और एवंभूतनयका विषय अल्प हो गया। यों तो इन दोनों नयोंमें बहु विषयकी और अल्प विषयकी बात है। अब कारणकार्यकी बात देखिये ! एवंभूतनय क्रियाके भेदसे अर्थमें भेद कर रहा है पर किस अर्थमें भेद कर रहा है जिसे समभिरूढ़नयने निर्णीत कर दिया, गौके मायने विशिष्ट पशु। यह तो समभिरूढ़नयसे तय किया गया कि गौ शब्दके अनेक अर्थ थे, उन अनेक अर्थोंमेंसे अन्य अर्थोंको त्यागकर केवल एक विशिष्ट पशुको ही गौ करार किया तो यह समभिरूढ़काविषय है। अब गौ शब्दसे जिस पदार्थका प्रतिपादन किया गया उस ही पदार्थमें तो एवंभूतनय भेद कर रहा है कि गौका अर्थ है जाने वाला। तो जब जाये तब गौ, जब न जाय तो गौ नहीं, इस प्रकार समभिरूढनय पूर्वक ही एवभूतनय हो गया। अतः समभिरूढनय है कारणभूत और एवं भूतनय है यों कार्यभूत उत्तर है इन प्रश्नोंका सब नयोंमें कौनसा नय बहुविषय वाला है और कौनसा नय अल्पविषय वाला है कारणभूत है और कौनसा नय कार्यभूत है ?

एक विषयमें नयोंके प्रवर्तनकी एक विशेषता —यहाँ जिज्ञासु प्रश्न करता है कि ये सब नय क्या एक विषयमें बिना विशेषताके सामान्यरूपसे प्रवर्तते हैं अथवा इनमें कोई विशेषता है? उत्तरमें कहते हैं कि इनमें यह विशेषता है कि जहाँ उत्तरोत्तर नय पदार्थके अंशमें वर्तता है, लगता है, वहाँ पूर्व–पूर्व भी नय लगता ही है। जैसे कि सहस्रमें अर्थात् हजारमें अष्टशतीका याने ८०० का विरोध नहीं है। अर्थात् हजारमें अष्टशती याने ८०० समाया हुआ है। अथवा अष्टशतीमें पञ्चशती अविरोधके वर्तती है याने ८००में ५०० समाया हुआ है। तो जैसे यहाँ उत्तरोत्तर संख्या पूर्व पूर्व संख्यामें अविरोधमें रहती हैं इसी प्रकार उत्तरोत्तर नयके प्रसंगमें पूर्व पूर्व नय लगता ही है परन्तु जहां पर पूर्व पूर्व नय प्रवर्तित होते हैं। वहां उत्तरोत्तर नय नहीं लगता है जैसे कि ५००में ८०० की प्रवृत्ति नहीं है। यहां भाव यह है कि उत्तरनय सूक्ष्म विषयको जानता है और पूर्वनय उस उत्तरनयके विशाल विषयको जानता है। अब जहाँ सूक्ष्म विषय जाना गया है वहाँ यह बात स्पष्ट घटित है कि वह किसी विशाल विषयका ही तो सक्षेप है। तो जहाँ सूक्ष्म विषय जाना गया वहाँ विशाल विषयको जानने वाला नय लगता ही है, क्योंकि विशाल विषय दिये बिना सूक्ष्म विषयका बोध नहीं हो सकता। एक प्रसंग दृष्टान्तमें ले लो कि जैसे संग्रहनयके विषयमें व्यवहारनय प्रवर्तित होता है व्यवहारनय जिस विषयको जना रहा है उसकी उत्पत्ति संग्रहनयके विषयके बाद हुई है, इसी प्रकार सर्व प्रसंगोंमें समझिये कि उत्तरनय जहाँ लगता है वहाँ पूर्वनय लगता ही है। और जहाँ पूर्वनय लग रहा है अर्थात् विशाल विषयको ग्रहण करने वाला नय चल रहा है वहाँ उत्तरनय नहीं चल रहा। कोई पुरुष विशाल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषय करने वाले पूर्वनयसे परिज्ञान करके बस जिज्ञासा आगे न रखे उत्तरनयकी वहाँ गुंजाइस ही नही है, लेकिन उत्तरनयकी उत्पत्ति पूर्वनयके परिचयके बिना नही हो सकती, इस कारण जहाँ उत्तरनय लग रहा है वहाँ पूर्वनय लगता ही है, किन्तु जहां पूर्वनय लग रहा है उस विषयमें उत्तरनयकी धुन नहीं है।

नय और प्रमाणके विषयप्रवर्तनके सम्बन्धमें विशेषता—अब नय और प्रमाणकी वृत्तिपर विचार करिये जैसे कि उत्तर संख्यामें पूर्व संख्याका अविरोध है और उत्तरनयमें पूर्वनयका अविरोध है इसी प्रकार जो नयका अर्थ है, विषय है अर्थात् वस्तु के अंश मात्रका जानने वाले नयका विषय वस्तुका कोई अंश, उसको जो जान रहा है उस परिज्ञानमें उस नयके विषयमें प्रमाणकी वृत्तिका अविरोध है। प्रमाण जानता है अंश सहित वस्तुको और नय जानता है वस्तुके अंशमात्रको। तो वस्तुके अंशमात्रका ज्ञान तभी सम्भव है जब प्रमाणसे उस वस्तुको जान रखा हो और नयके लक्षणमें कहा भी है कि प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमें वस्तुके अंश मात्रको जानना सो नय है। जहाँ नयका परिज्ञान किया जा रहा है वहाँ प्रमाक्षकी वृत्ति अवश्य है, लेकिन जहाँ प्रमाणका विषय जाना जा रहा है वहाँ वस्तुके अंशमात्रको जानने वाले नयकी वृत्ति नही रहती, क्योंकि प्रमाण वस्तुको पूर्णतया जानने लगता है। अब उस समग्र विषयके परिचयमें वस्तुके अंशमात्रकी कल्पना नही की जा रही है इस कारण प्रमाणके अर्थमें नयोंकी वृत्ति तो नही है लेकिन जहाँ नयोंकी वृत्ति है नयका विषय जाना जा रहा है तो वह तभी सम्यक्नय कहलायेगा जब कि प्रमाणका विषय उस ज्ञाताके ज्ञानमें है। तो नयके अर्थमें प्रमाणकी वृत्ति अविरुद्ध रूपसे रहती है। यह है नयोंके एक विषयमें विशेषतासे प्रवर्तित होनेकी बात।

नयसप्तभंगीकी प्रवृत्तिमें नैगम और संग्रहनय दृष्टिकृत विधिप्रतिषेध कल्पना—अब शंकाकार कहता है कि जब यह अन्तर आया कि नयके विषयमें प्रमाण की वृत्ति चलती है पर प्रमाणके विषयमें नयकी वृत्ति नहीं चलती, तब फिर नय सप्त-भंगीकी प्रवृत्ति कैसे चलेगी? अर्थात् अब नयमें परस्पर विरुद्ध व अवक्तव्य आदिक अनेक भंगोंकी प्रवृत्ति कैसे हो जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि प्रत्येक पर्यायके प्रति किसी एक वस्तुमें अविरुद्ध रूपसे विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करनेसे नयसप्तभंगीकी प्रवृत्ति हो जायगी। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जैसे संकल्पमात्रको ग्रहण करने वाले नैगमनयका आश्रय करनेसे विधिकी कल्पना होती है अर्थात् नैगमनयमें जैसे यह विषय हुआ कि कोई पुरुष जंगलमें लकड़ी लेनेके लिए जा रहा था और किसी ने पूछा कि कहाँ जा रहे हो? तो वह कहता है कि प्रस्थ लेनेके लिए जा रहा हूँ। प्रस्थ होता है एक मापका बाँट। जैसे ५-६ किलो अनाज जहाँ समा जाय ऐसा एक काठका बर्तन उसे कहते हैं प्रस्थ। तो वहाँ प्रस्थ केवल कल्पनामात्र है। तो कल्पना-मात्ररूपसे जाना गया प्रस्थ वहाँ याने नैगमनयकी दृष्टिमें है, तो प्रस्थ स्यात् अस्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अर्थात् संकल्प मात्रमें समझा गया इस दृष्टिसे प्रस्थ है, लेकिन जब संग्रहनयका आश्रय किया जायगा तो वहाँ प्रतिषेध कल्पना बनेगी अर्थात् संकल्पमात्र प्रस्थ नही है संग्रहनयकी दृष्टि में । नैगमनय सत् और असत् दोनोंको विषय करता है, तो नैगमनयके अभिप्रायमें जिस प्रकारका पदार्थ है संग्रहनयके अभिप्रायमें पदार्थ उस प्रकार नही है, क्योंकि संग्रहनय सत्को ही विषय करता है । प्रस्थ वहाँ सत् है नही, क्योंकि संकल्प मात्र है तो अब यहाँ नयों नयोंके बीचमें स्यात् अस्ति और स्यात नास्तिका प्रयोग बन गया । नैगमनयकी दृष्टिमें जो संकल्पमात्र है प्रस्थ, संग्रहनयकी दृष्टिमें वह नही है । संकल्पमात्र प्रस्थ केवल उपयोगमें कल्पनामें समाया हुआ वस्तु नैगमनयकी दृष्टिमें है पर संग्रहनयकी दृष्टिमें नहीं है । संग्रहनय सत्को ही विषय करता है । संग्रहनयकी दृष्टिमें प्रस्थ सन्मात्र होगा अर्थात् जो बनाये हुए प्रस्थ मापके बर्तन हैं उन सबका संग्रहरूप जातिको प्रस्थ कहेंगे । जब कि नैगमनयसे एक कुछ लाये भी नही हैं, केवल संकल्प है कि हमें प्रस्थ बनाना है और उसके लिए लकड़ी लाना है, तो उसके चित्तमें अभीसे प्रस्थ स्यात् अस्ति है परन्तु संग्रहनयकी दृष्टिमें सन्मात्र प्रस्थकी प्रतीति होती है और संग्रहनयकी दृष्टिमें असत् संकल्प मात्र प्रस्थकी प्रतीतिका विरोध है । जैसे आकाश पुष्प असत् है; आकाशका कोई फूल नही होता । तो आकाश फूल संग्रहनयकी दृष्टिमें नही है । किसका संग्रह करें । जब कुछ है ही नही तो संग्रह किसका किया जाय ? तो यहाँ वह प्रस्थ आदिक संकल्पमात्र नैगमनयसे है और संग्रहनयसे नही है । इस प्रकार एक ही वस्तुमें दो भंगोंका अविरोध हुआ ।

व्यवहारनयकी दृष्टिमें पूर्वनयके विषयकी प्रतिषेधकल्पना—नयसप्तभंगीके विषयमें अब आगे चलो । जब व्यवहारनयका आश्रय किया जाता है तो द्रव्य में अथवा पर्यायमें प्रस्थकी प्रतीति होती है । अब यहां संग्रहनय और व्यवहारनयके मुकाबलेमें स्यात् अस्ति और नास्तिकी बात कही जा रही है । संग्रहनयने सन्मात्र प्रस्थको ग्रहण किया था, व्यक्तिरूप प्रस्थको नहीं । संग्रहनयने जितने भी प्रस्थ हो लें उन सारे प्रस्थोंका संग्रह हो जाय ऐसी प्रस्थ जातिका संग्रह किया था, लेकिन ऐसे जातिमात्र रूपसे सन्मात्र प्रस्थका परिचय संग्रहनयकी दृष्टिमें है, पर व्यवहारनयकी दृष्टिमें नहीं, क्योंकि व्यवहारनय प्रस्थको द्रव्यरूप या पर्यायरूपसे ग्रहण करता है । तो जब संग्रहनयका आश्रय करके सन्मात्र प्रस्थका अस्तित्व जाना तब व्यवहारनयका आश्रय करके उस सन्मात्र प्रस्थको प्रतिषेध किया गया । अथवा उस नैगमनयके मुकाबलेमें व्यवहारनयकी बात रखकर परिचय किया जा रहा है । नैगमनयकी दृष्टिमें संकल्पमात्र प्रस्थ है तो व्यवहारनयकी दृष्टिमें संकल्पमात्र प्रस्थका अस्तित्व नहीं है किन्तु द्रव्यरूप अथवा पर्यायरूपका अस्तित्व है, क्योंकि व्यवहारनयसे विपरीत अर्थात् द्रव्यरूप या पर्यायरूप व्यक्तिरूपको ग्रहण करने वाले व्यवहारनयसे विपरीत विषय है नैगमनयका और वह व्यवहारनयकी दृष्टिमें असत् है । उस असत्का या संग्रहनयके द्वारा सन्मात्ररूपसे जाने गए प्रस्थका अनुभव नहीं किया जा सकता है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूर्वनयोंके विषयकी ऋजुसूत्रनयदृष्टिसे प्रतिषेधकल्पना—अब और आगे चलें तो ऋजुसूत्रनयका आश्रय करनेसे पर्यायमात्र प्रस्थ हीकी प्रस्थरूपसे प्रतीति होती है। तो नैगमनयसे संकल्पमात्रका ग्रहण किया था उसकी दृष्टिमें संकल्पमात्र प्रस्थ है, किन्तु ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें वह नही है और संग्रहनयसे भी विषय किए गए प्रस्थका अस्तित्व भी ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें नही है। व्यवहारनयके द्वारा विषय किए गए प्रस्थकी भी सत्ता ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें नही है, क्योंकि पर्यायमात्र प्रस्थ निगाहमें न हो तो ऋजुसूत्रनयका वह विषय ही नहीं बन सकता है। तो इन नयोंके विषयमें यह घटित हो रहा है कि वही एक वस्तु धर्म स्यात अस्ति स्यात नास्तिरूप है नयोंकी दृष्टिमें। नैगमनयकी दृष्टिमें जिसरूप प्रस्थ है उसरूप प्रस्थ ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें नही है, अन्य नयोंकी दृष्टिमें नही है।

शब्दनयोंकी दृष्टियोंका नयसप्तभंगीमें सहयोग—अब इससे आगे और बढ़ो, वह संकल्पमात्र प्रस्थ अथवा अब तकके नैगमसंग्रह व्यवहार ऋजुसूत्रनयके विषयमें आया हुआ प्रस्थ उन नयोंकी दृष्टिमें है तो शब्दनयकी दृष्टिमें वह नही है, क्योंकि शब्दनयका आश्रय करनेसे काल आदिकसे भिन्न अर्थमें प्रस्थपना बनता है अर्थात् ऋजुसूत्रनय तो कालभेदसे भेद ग्रहण नही करता था और शब्दनय काल आदि भेदोंसे पदार्थमें भेद ग्रहण करता है तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें काल आदिक भेदोंसे भेदको न प्राप्त हुआ अर्थस्वरूप पर्यायमात्र प्रस्थ गृहणमें आ रहा था, लेकिन शब्दनय की दृष्टिमें शब्द प्रधानताके कारण काल आदिक भेदोंसे भिन्न हुए अर्थमें प्रस्थपना है, तब उस ही पूर्वनयके विषय किये गए पदार्थका शब्दनयकी दृष्टिसे प्रतिषेध हो गया है। यदि कालभेदसे पदार्थमें भेद न माना जाय तो पट आदिकमें भी प्रस्थकी कल्पना हो बैठेगी। इससे पूर्वनयोंके द्वारा विषयभूत हुआ प्रस्थ शब्दनयकी दृष्टिमें नही है। अथवा इन पूर्वनयोंके द्वारा विषय किया गया प्रस्थ समभिरूढनयका आश्रय करनेपर नही है। समभिरूढनयकी दृष्टिमें पर्यायभेदसे भिन्न हुए अर्थमें प्रस्थपनेका परिचय होता है और समभिरूढनयका विषय भी अपनी सीमामें यथार्थ है। अथवा और आगे चलो तो इन सब पूर्वनयोंके द्वारा विषय किया गया प्रस्थ अथवा नैगमनयके द्वारा विषय किया गया संकल्पमात्र प्रस्थ एवंभूतनयकी दृष्टिमें नही है। एवंभूतनयकी दृष्टिमें उस ही प्रस्थमें प्रस्थपना माना जायगा कि जो माप रहा हो, जो प्रयोगमें आ रहा हो, अनाज जब नापा जा रहा हो तो उस प्रस्थकी क्रियामें परिणत हुए प्रस्थको ही प्रस्थ कहा जायगा। तो एवंभूतनयकी दृष्टिमें उसका नास्तित्व है। इस प्रकार एक ही प्रस्थ नामक वस्तुमें भिन्न-भिन्न नयोंकी दृष्टिसे अस्तित्व और नास्तित्व घटित होते हैं।

नयसप्तभंगीमें संयोगी भंगोंका गठन—नयसप्तभंगीमें जैसे कि पहिले दो भंग घटित हुए हैं, इन दोनों भंगोंको एक साथ नहीं बोला जा सकता है इस कारणसे अवक्तव्य भंग बनता है। इस तरह नय सप्तभंगीके प्रसंगमें ये तीन स्वतंत्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भंग हुए प्रस्थस्यात् अस्ति प्रस्थ स्यात् नास्ति, प्रस्थस्यात् अवक्तव्य । अब इन तीन भंगोंके संयोगवाली दृष्टिसे देखते हैं तो क्रमसे दो दृष्टियोंको लेकर तीन भंग और बनते हैं—प्रस्थस्यात् अस्तिनास्ति । प्रस्थस्यात् अस्ति अवक्तव्य, प्रस्थस्यात् नास्ति अवक्तव्य और, जब इन तीनों दृष्टियोंकी एक साथ ग्रहण करते है और जब उन्हें क्रमसे विवक्षित करते हैं तो वहाँ ७ वाँ भंग उपस्थित होता है प्रस्थ स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य । इस प्रकार तीन स्वतन्त्र, तीन दो के मिलकर और एक तीनोंका मिलकर ये ७ भंग एक विषयमें बनते हैं ।

प्रमाणसप्तभंगीकी विशेषता—अब शंकाकार कहता है कि नय सप्तभंगी का तो उदाहरण दे दिया गया है, पर अब यह बतलावो कि प्रमाण सप्तभंगीसे उस नय सप्तभंगीमें कोई विशेषता है क्या ? सप्तभंगी तो दोनों जगह लगी । ७ प्रकारके भंगकी कल्पना नयोंके सम्बन्धमें भी हुई और प्रमाणके सम्बन्धमें भी हुई । पर इन दोनों सप्तभंगियोंमें कोई अन्तर है अथवा नही ? उत्तरमें कहते हैं कि इसमें सकलादेश और विकलादेशकृत अन्तर है अर्थात् प्रमाणसप्तभंगीमें तो सम्पूर्ण वस्तुमात्रको ग्रहण करते हुए भंग बनता है और नय सप्तभंगीमें वस्तुके अंशमात्रको ग्रहण करता हुआ भंग बनता है । नय सप्तभंगी विकलदेश स्वभाव वाली है, क्योंकि नयसप्तभंगी वस्तुके अंशमात्रका निरूपण करती है । नयोंका विषय ही वस्तुके अंशमात्रका प्ररूपण करती है, नयोंका विषय ही वस्तुके अंशमात्रका कथन करना है तो जब नयोंके प्रसंगमें सप्तभंगी की जायगी अर्थात् ७ प्रकारसे परिचय किया जायगा तो वह सारा परिचय भी वस्तुके अंशमात्रका कथन करने वाला होगा, परन्तु प्रमाण सप्तभंगी सकलादेशस्वभाव वाली है अर्थात् प्रमाणका विषय समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेका है । तो सम्पूर्ण वस्तुओंका ग्रहण करने वाले प्रमाणके प्रसंगमें जब उसका भंग लगाया जायगा तो उनमें भी वे सबके सब सम्पूर्ण वस्तुओंको ग्रहण करने वाले होंगे ।

उदाहरणपूर्वक प्रमाणसप्तभंगीकी विशेषताका विवरण—जैसे कि एक जीव वस्तुके विषयमें प्रमाणसप्तभंगी घटित किया जाय तो यों घटित होंगे । जीव अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे है तो जीव वस्तु स्वचतुष्टयसे स्यात अस्ति और वही जीव वस्तु परद्रव्यके क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे स्यातनास्ति, तो यहाँपर उस जीवको ही पूरेको लक्ष्यमें लेकर पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी दृष्टि करके उस का नास्तित्व कहा गया है । वही जीव वस्तु स्वचतुष्टयसे है और वही जीव वस्तु-परचतुष्टयसे नहीं है । प्रमाण प्रसंगमें ऐसे दो भंग बननेपर इन दोनोंको एक साथ कहना चाहिए । जब एक वस्तुके सम्बन्धमें दो दृष्टियोंसे अस्तित्व और नास्तित्व जाना गया है तो वस्तुकी समग्रता तो वही हुई अर्थात् पूरा परिचय अस्तित्व और नास्तित्वसे जाना गया । अब उसको एक साथ ही समझाना चाहिये । तो जब उसे एक साथ कथन करनेका प्रयास करते हैं तो वह कथन हो नहीं पाता । एक समयमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन दोनों अपेक्षाओंका वक्तव्य नही हो सकता, इस कारण यह जीव वक्तव्य है। इस तरह जीव परवस्तुके सम्बन्धमें तीन स्वतन्त्र भंग हुए जीव स्यात् अस्तित्व, जीव स्यात् नास्ति, जीव स्यात् अवक्तव्य। अब ये तीन स्वतन्त्र दृष्टियाँ हुईं। इन्हें क्रमसे विवक्षित करके जब प्रयोगमें लायेंगे तो दो-दो भंगोंके संयोग बनेंगे, तीन और तीन स्वतन्त्र भंगोंका संयोग बनेगा एक। तब ये संयोगी चार भंग इस प्रकार होंगे कि जीव स्यात् अस्ति नास्ति, जीव स्यात् अस्ति अवक्तव्य जीव स्यात् नास्ति अवक्तव्य, जीव स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य, तो उस जीवको पूर्णरूपसे ग्रहण कर करके इसकी अपेक्षा भेदोंसे अस्तित्व नास्तित्वको प्रमाण जाने तो यह प्रमाण सप्तभंगी कहलाया। समग्र वस्तुको विषय करते हुए भंग कल्पनायें बनाना उसे कहते हैं प्रमाण सप्तभंगी। और, वस्तुके अंशमात्रको ग्रहण करने वाले नयोंकी अपेक्षासे अस्तित्व नास्तित्वके विधिप्रतिषेधकी कल्पनायें बनाना उसे कहते हैं नयसप्तभंगी। तो प्रमाण सप्तभंगीसे नयसप्तभंगीमें यह अन्तर है कि प्रमाण सप्तभंगी तो सकलादेश स्वभाव वाली है और नय सप्तभंगी विकलादेश स्वभाव वाली है. इस प्रकार जैसे नयोंमें सप्तभंगी घटित की गई थी इसी प्रकार प्रमाणमें भी यह सप्तभंगी घटित होती है।

नयवाक्य और प्रमाणवाक्यमें सात ही भंग होनेके नियमके कारणका

प्रश्न – यहाँ जिज्ञासु प्रश्न करता है कि नय वाक्य और प्रमाण वाक्यमें ७ ही भंग क्यों सम्भव होते हैं। जैसे प्रमाणके विषयमें सप्तभंग कहे हैं उसी प्रकार नयके विषय में भी सप्तभंग कहे हैं। जब किसी एक वस्तुको पूरा विषय करके कोई धर्म बताया जाता है तब तो प्रमाण सप्तभंगी होती कही है और जब किसी वस्तुके अंशमात्रको लक्ष्य में लेकर धर्म बताया जाता है तब नयसप्तभंगी कही है। नयसप्तभंगीमें जैसे नैगमनयके विषयको लक्ष्यमें लेकर अस्ति भंग बनाया तो वही संग्रहनयकी दृष्टिमें नास्ति है अन्य सब नयोंकी दृष्टिमें नास्ति है। जैसे नैगमनयका विषय है कि कोई पुरुष रसोई घरमें लकड़ी जला रहा है और पूछनेपर वह उत्तर देता है कि रोटी बना रहे हैं तो रोटी संकल्पमात्र है, सत् नही है, असत् है। तो संकल्पमात्र रोटी नैगमनयकी दृष्टिमें अस्ति है तो संग्रहनय और अन्य नयोंकी दृष्टिमें संकल्पमात्र रोटी नास्ति है फिर अवक्तव्य और संयोगी भंग होकर नयके विषयमें ७ भंग होते हैं। प्रमाणके विषयमें [पूरे जीव को लक्ष्यमें लेकर जीव स्वचतुष्टयसे है पर चतुष्टयसे नहीं है। एक साथ न कहा जा सकनेसे अवक्तव्य है. फिर जहाँ तीन स्वतंत्र भंग हुए कि चार संयोगी भंग और होंगे। इस तरह नयवाक्यमें सप्तभंग कहे हैं और प्रमाण वाक्यमें भी ७ भंग कहे हैं, तो जिज्ञासुका प्रश्न है कि ७ ही भंग क्यों सम्भव हैं ?

नयवाक्यमें व प्रमाणवाक्यमें सात ही भंग होनेके कारणका प्रतिपादन

उक्त प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि जिसे समझाना है ऐसे शिष्यके प्रश्न ७ प्रकारके ही सम्भव हो सकते हैं; जिज्ञासायें ७ प्रकारकी होंगी उनके समाधानमें ये ७ भंग बनते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। प्रश्नके वशसे ही सप्तभंगीका नियम चलता है? अब जिज्ञासु पूछता है कि ७ प्रकारके ही प्रश्न क्यों होते हैं? उत्तरमें कहते हैं कि जिज्ञासा ७ प्रकारकी ही सम्भव हो सकती है। अनेकान्तके सम्बन्धमें जिज्ञासु शिष्य जाननेकी इच्छा करेगा तो उसके ७ प्रकारसे ही प्रश्न हो सकेंगे, जाननेकी इच्छा हो सकेगी। यदि पूछो कि जिज्ञासा भी ७ प्रकारकी ही क्यों होती है? तो उत्तर यह है कि ७ प्रकारसे ही संशय हो सकते हैं। जिज्ञासा हुआ करती है उस तत्त्वकी जिसका संशय सम्भव है? चाहे संशय न हो रहा हो पर जितने प्रकारोंमें संशय सम्भव है उतने ही प्रकारोंमें जिज्ञासा हुआ करती है। यदि पूछा जाय कि संशय भी ७ ही प्रकारसे क्यों होता है? तो उसका समाधान यह है कि संशयके विषयभूत वस्तु धर्म ७ ही प्रकारसे हो सकते हैं।

सप्तभङ्ग होनेका स्पष्टीकरण - इस ही सप्तभंगके सम्बन्धमें स्पष्टीकरण करते हैं कि जैसे सर्वप्रथम किसी भी वस्तुधर्मका सत्त्व माननेपर अस्ति पहिले ही मानना होता है। जैसे जीव स्वरूप चतुष्टयसे है तो जीवका सत्त्व यह जीवका धर्म है इस प्रसगमें यदि जीवका सत्त्व नही माना जाय, पहिला भंग नही माना जाय, स्वरूप चतुष्टयसे जीव है ऐसा न माननेपर जीव पदार्थमें वस्तुपना ही नही ठहर सकेगा जीव है यह नही माना, इसका अर्थ क्या हुआ कि जीव वस्तु न रही। जैसे कि खरगोशके सींग, उसमें सत्त्व नही है तो अर्थ यह है कि है ही नही, तो पहिला भंग हुआ सत्वका। सत्त्व न माननेपर वस्तुमें वस्तुत्व नही रह सकता है। दूसरा धर्म है असत्व। जीव परचतुष्टयसे असत् है। तो जीवका ऐसा कथंचित् असत्त्व जीवका धर्म है। जीवमें नास्तित्व तका जा रहा है पर चतुष्टयकी दृष्टिसे यदि असत्त्वको नही मानते हैं अर्थात् परचतुष्टयसे जीव नही है यदि यह धर्म न हो तो अर्थ क्या हुआ कि जीव परचतुष्टय से भी है तो जीवका वस्तुत्व नही रह सकता। तो जीवमें जैसे सत्व धर्म है, उसी तरह असत्वधर्म भी है। अगर असत्व धर्म नही माना जाता तो जैसे स्वरूप चतुष्टयसे वस्तुसत्त्व है उसी तरह पररूपसे भी वस्तुसत्व हो जायगा। तब प्रतिनियत स्वरूप सम्भव ही न हो सका, क्या स्वरूप रहा? अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे है, सर्वात्मकरूपसे है, तो उसमें प्रतिनियत स्वरूप सम्भव न हो सका तो वस्तुका स्वरूप न बना, इससे दूसरा भंग मानना होगा। क्या जीव है? इसका उत्तर प्रथम भंगने दिया। क्या जीव नही है? इसका उत्तर द्वितीय भंगने दिया। हाँ, जीव नही है। कैसे जीव नही है? परचतुष्टयसे नही है। ये दो पहिले धर्म परिचित हो जानेपर फिर जब ये दो धर्म हैं, वस्तुमें तो इन्हें एक साथ भी बताना चाहिए कि पूर्ण रूप से वह वस्तु किस प्रकार है। तो एक साथ न बताया जा सकनेसे अवक्तव्य है। वस्तु पूर्णतया सब दृष्टियोंसे कैसी है ऐसा भी प्रश्न हो सकता है? उसका उत्तर दिया तृतीय भंगमें कि वस्तु अवक्तव्य है। फिर ये तीन होकर भी अब इन दृष्टियोंको क्रम से भी दृष्टिमें लाकर समझा जा सकता है तो उससे फिर चार संयोगी धर्म बनते हैं स्यात अस्ति नास्ति स्यात अस्ति अवक्तव्य, स्यात नास्ति अवक्तव्य और तीनोंका संयोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करके बना स्यात अस्ति अस्ति नास्ति अवक्तव्य । ये ७ भंग हैं ।

संयोगी भङ्गसहित सप्तभंगकी सिद्धि—यदि ये संयोगसहित ७ भंग न हों तो क्रमसे सत् और असत् सम्बन्धी शब्द विकल्पादिकका व्यवहार ही नहीं हो सकता। कोई ऐसी मनमें जिज्ञासा करें कि स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति स्यात् अवक्तव्य ये तीन धर्म काफी हैं। अब संयोगी धर्म माननेकी क्या आवश्यकता है? आवश्यकता क्या है इससे तत्त्व परिचय नही कराया जा रहा, किन्तु पुरुषोंको जिज्ञासा होती है क्रमसे इन दृष्टियोंको निरखकर वस्तुधर्म जाननेकी उसके समाधानमें ये चार संयोगी भङ्ग बन जाते हैं। यदि ये संयोगी भंग न होते तो क्रमसे सत् असत् अवक्तव्य आदिक विकल्प व शब्द व्यवहार नहीं बनते जब ये भंग वस्तुमें होते हैं तो यह शब्दव्यवहार बराबर चलता रहता है इससे सिद्ध है कि वस्तुमें ये ७ भंग हैं। यह सयोगीभंग विषयक शब्द व्यवहार निर्विषय नही है कि इसका कोई विषय न हो और शब्द व्यवहार थोथे चल रहे हों ऐसा नही होता, क्योंकि वस्तुके जानने और वस्तुमें प्रवृत्ति और उसकी प्राप्तिका निश्चय होनेसे यह संयोगी भंग भी एक वास्तविक विषय सिद्ध होता है। जैसे कि अस्ति नास्ति और अवक्तव्य विषयक ज्ञानसें प्रवृत्ति प्राप्ति और अर्थकार्य होता है इसी प्रकार इससे भी उसके सम्बन्धमें जानकारी होना, प्रवृत्ति होना, निर्णय होना ये सब पाये जाते हैं। इससे ७ प्रकारके संशय सम्भव हैं। अतएव ७ प्रकारकी जिज्ञासा है और ७ प्रकारकी जिज्ञासाके समाधानमें सप्तभंग होते हैं। भैया, यह प्राकृतिक बात है कि कुछ भी बोला जाय कुछ भी विषय ज्ञानका बनाया जाय। बस किसी भी धर्मके जाननेके साथ ही उसमें सातों भंग आ जाते हैं। अस्ति नास्ति से गुम्फित है। कुछ भी वस्तु है तो वह अपने प्रतिपक्षकी अपेक्षासे नहीं है, यह बात उसमें अपने आप पड़ी हुई है। जैसे यह चौकी है तो चौकी है इसके साथ ही अथवा इसके माननेपर इसकी अविनाभावी यह बात भी पड़ी है कि चौकीके सिवाय बाकी जितने पदार्थ हैं वे पदार्थ यह नही है। यदि इन दोनों कामोंमेंसे किसी भी एक को न माना जाय तो वस्तुका स्वरूप नही बन सकता है? इस प्रकार इस नय वाक्यमें और प्रमाण वाक्यमें ये ७ वाक्य सम्भव हुए।

संयोगी भंगमें संयुक्त भंगका पुनः संयोग माननेकी असंगतता—शंकाकार कहता है कि प्रथम और द्वितीय धर्मकी तरह प्रथम और तृतीय आदिक धर्मोंका क्रम से और युगपत् विवक्षा करनेपर अन्य धर्म भी सिद्ध हो बैठेंगे तो ७ प्रकारके धर्मोंका नियम नही सिद्ध हो सकता। शंकाकारका मतलब यह है कि जैसे प्रथम और द्वितीय धर्मसे मिलकर एक धर्म बनावा स्यात् अस्ति नास्ति, यह एक धर्म बन गया अब स्यात् अस्ति नास्ति और मिला दिया तो यह अन्य धर्म कैसे सिद्ध न होगा? स्यात् अस्ति स्यात अस्ति नास्ति। इसी प्रकार प्रथम धर्मके साथ अन्य धर्म जोड़ दे, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम जोड़ दे तो यों अनेक धर्मान्तर क्यों न होंगे जैसे ७ वां भंग है स्यात अस्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नास्ति अवक्तव्य उसे अस्तिके साथ जोड़ दिया। एक ८ वां भंग यह भी बन बैठे स्यात् अस्ति अस्ति नास्ति अवक्तव्य, अब प्रथममें और ८ वें आदि भंगको जोड़ दें, इस तरहसे अनेक भंग हो सकते है। फिर यह नियम कैसे रहा कि भंग ७ ही होंगे। उत्तर देते हैं कि क्रमसे विवक्षित प्रथम और तृतीय धर्मकी अन्य धर्मरूपसे प्रतीति नही होती, क्योंकि एकमें दो सत्वका होना असम्भव है। एक जीवके स्वरूपमें जैसे अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावस्वरूप है और पररूपसे भी सत्व हो जाय, ये दो बातें जैसे सम्भव नही हैं, इसी प्रकार ७ भंगोंमेंसे अब किन्हीं भी दो भंगोंको जोड़ करके एक धर्म बनाया जाय यह सम्भव नही है। जैसे कि मनुष्य भवकी अपेक्षा अस्तित्व नास्तित्वकी बात करे तो यह मनुष्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है और अन्य देव तिर्यंच आदिक स्वरूपसे नहीं है। अब ये स्वतंत्र धर्म हुए। स्वतन्त्र धर्मोंको मिला करके तो सयोगी धर्म बनाया जा सकता है पर संयोगी भंग बननेक बाद फिर स्वतन्त्रके साथ संयोगीको मिलाकर फिर अन्य धर्म बनाया जाय सो न बनेगा, क्योंकि संयोगी भंगमें वह स्वतन्त्र स्वय सम्मिलित हो गया है। जैसे तीन वस्तु हैं—हर्र, बहेड़ा, आंवला, अब ये स्वतंत्र हैं इन्हें स्वतंत्र भी खाया जा सकता है और संयोगी बनाकर हर्र बहेडा हर्र आँवला, बहेडा आवलां, और हर्र बहेड़ा आँवला इस तरह चार संयोगी भंग भी हो जाते हैं। अब ये ७ प्रकार हो गए। अब इन सातोंमें कौनसी गुंजाइस रही कि सातों में किसी औरको मिलाकर भंग बनाया जाय। सातमें सब आ गए। कोई कहे कि हर्र और हर्र बहेड़ा इन दोनोंको मिला दिया जाय तो वे तो पहिले मिले हुए ही हैं। अब अन्य धर्म बनानेकी वहाँ आवश्यकता नहीं हो सकती। तो यों किसी भी वाक्यमें ७ भंग ही सम्भव हो सकते हैं अन्य नही हो सकते।

वचनके साथ ही सप्तभंगका अनुपदेश—कोई भी पुरुष दर्शनशास्त्रमें या व्यवहारमें कुछ भी बात बोले तो बोलनेके साथ ही उसमें सप्त प्रकारता बन जाती है। किसीने कहा कि इसका वचन सत्य है तो इसके साथ यह भी तो जुड़ा हुआ है कि इसके वचन असत्य नहीं हैं। यदि यह दूसरी बात जुड़ी हुई न हो तो इसका वचन सत्य है इसमें बल भी न रहेगा और यह स्वरूप ही न बनेगा। तो ये दो धर्म अविनामी हुए। अब इन दो धर्मोंको एक साथ समझनेकी दृष्टि भी होती है और फिर उन के प्रतिपादनके क्रमसे भी समझनेकी दृष्टि होती है। तो वहाँ ७ भंग बनेंगे। कोई पुरुष कुछ भी शब्द वचन बोले, उस वचन बोलनेके साथ ही उसमें सप्त प्रकारता आ ही जाती है समझने वाले उसको समझा देते हैं दृष्टि बताकर और विवरण न समझने वाले नहीं समझा सकते लेकिन बात यदि प्रमाणीक है और किसी अल्प बुद्धि ने भी शब्द बोला है तो उसे यदि अपने उस वचनमें दृढ़ता है तो अव्यक्तरूपसे उसके परिचयके ७ प्रकार सम्भव हैं और उस ही बलपर वह अपनी बातपर दृढ़ होता है। जैसे जीवके सम्बन्धमें कहा गया कि जीव नित्य है तो नित्य है का प्रतिपक्ष है अनित्य तो जीव नित्य है तो उसके साथ ही वह भी पड़ा है कि जीव अनित्य नही है, यह तो

Version 1

एक दृष्टिकी अपेक्षा है प्रमाण सप्तभंगीमें जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है तो जीव पर्याय्-दृष्टिसे अनित्य है । दृष्टियाँ अलग अलग जुड़ती हैं और तब वचनमें सप्त प्रकारताकी बात आती है । तो इस प्रकार एक पर्यायदृष्टिसे भेददृष्टिसे जो कथन हुआ है उस कथनसे यह भी समझ लेना चाहिए कि उस तृतीय धर्मका क्रमसे अर्पित क्रमसे कहने की इच्छा किए जानेपर कोई अलग धर्म बन जाय, यह बात प्रतीतिमें नही आती है । अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यदि इस तरह दो भंगोंका मिलकर एक भंग नही बनाया जा सकता है तब फिर प्रथम और चतुर्थ भंगका या द्वितीय और चतुर्थ भंगका या तृतीय और चतुर्थ भंगका मेल करनेपर फिर अन्य भंग कैसे बना दिया ? यहाँ इस प्रसंगमें प्रथम धर्म तो "अस्ति" है, द्वितीय धर्म "नास्ति" है, तृतीय धर्म है "अस्ति नास्ति" तो अस्ति नास्तिका प्रथमके साथ मेल नहीं किया जा सकता, अर्थात् प्रथम और तृतीयको मिलाकर अन्य भग नहीं बनाया जा सकता । चतुर्थ भंग दिया है यहां अवक्तव्य । अस्तिके साथ अवक्तव्यका संयोग कराया जा सकता है । द्वितीयके साथ चतुर्थ मिलाया जा सकता है । अस्तिके साथ अवक्तव्यका संयोग कराया जा सकता है । तृयीयके साथ भी चतुर्थ धर्म मिलाया जा सकता है । अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य अब जब तीनों स्वतंत्र धर्म एक बार मिल चुके हैं तब उनको मिलाकर अब नया धर्म नहीं बनाया जा सकता ।

अवक्तव्यधर्मके साथ प्रथम, द्वितीय, तृतीय भंगके संयोग होनेसे धर्मान्तरत्व होनेका कारण—अवक्तव्यके साथ ये सब धर्म क्यों मिल गए कि अवक्तव्य धर्ममें सत्त्व और असत्त्वका परामर्श (विचार) नही है । जिन धर्मोंमें सत्त्व असत्त्वके भंग बन गए उनका मेल कराकर अन्य धर्म नहीं बनाया जा सकता । कोई कहे कि सातों भंगोंको इकट्ठा मिला देवे अथवा अटपट किन्हींको मिलाकर एक करदे और उसका नाम अवक्तव्य रखदे वह भी अवक्तव्य है । तो उत्तरमें कहते हैं कि यह बात सम्भव नहीं है, क्योंकि उस प्रकारसे विवक्षित हुए उन तीनों धर्मोंको सर्वथा अवक्तव्य मान लिया जाय तो फिर "अवक्तव्य है" इस शब्दके द्वारा वक्तव्य नहीं हो सकता । यों वस्तुमें एक-एक दृष्टि करके और स्वतंत्र तीन धर्म हुए हैं, अब उनका ही संयोग करके चार धर्म और बनाये जा सकते हैं । ७ भंग बननेके बाद अब उनका और परस्पर मिलाप कराकर कोई नया धर्मान्तर खड़ा कर देना यह बात सम्भव नही है । इस तरह नय वाक्य हुआ अथवा प्रमाण वाक्य हुआ, दोनोंमें ७ ही भंग सम्भव हो सकते क्योंकि ७ ही प्रयोग और प्रश्न सम्भव हैं, ७ ही प्रकारकी जिज्ञासा सम्भव है जिसके आधार पर प्रश्न होता है और ७ ही प्रकारसे संशयकी सम्भावना है, जिसके आधारपर जिज्ञासा बनती है, इस प्रकार नय वाक्यमें और प्रमाण वाक्यमें ७ भंग ही सम्भव होते हैं ।

सातों भंगोंमें स्व-स्वविषयकी प्रधानतासे प्रतीतिका कथन—यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकार कहता है कि अस्ति, नास्ति व अस्ति नास्तिके साथ जो अवक्तव्य लगा है अथवा कहो अवक्तव्यके साथ जो अस्ति नास्ति और उभय (अस्ति नास्ति) लगाया गया है उसकी एक तो प्रतीति नही होती है और कदाचित मान लो कि है यहाँ तो ये अन्य धर्म सिद्ध नही होते। जैसे कि अस्ति अवक्तव्य कहा तो जो अस्ति भंगमें और अवक्तव्य भंगमें कहा गया वही तो अस्ति अवक्तव्य कह कर कहा गया, इसी प्रकार प्रथक् प्रथक् नास्ति भंगमें और अवक्तव्य भंगमें जो कुछ कहा गया इन दोनोंका संयोग करनेपर नस्ति अवक्तव्य भंगमें भी वही कहा गया। तो यों संयोगी भंगोंमें धर्मान्तरता सिद्ध नही होती। समाधानमें कहते हैं कि यह शंका संगत नही है, क्योंकि सप्तभंगीके ७ भंगोंमें प्रथम भंगमें तो सत्वकी प्रधानतासे प्रतीति है, स्यात अस्ति स प्रथम भंगमें अस्तित्वकी प्रधानतासे प्रतीति है। द्वितीय भंगमें अर्थात् स्यात् नास्ति इस विकल्पमें नास्तित्वकी प्रधानतासे प्रतीति है. परचतुष्टयसे नहा है तो ऐसा नास्तित्व जो एक प्रकृत वस्तुमें माना गया है उसकी प्रधानतासे प्रतीति है। तृतीय भंगमें अर्थात् स्यात् अस्ति नास्ति इसमें क्रमसे विवक्षित सत्व और असत्वकी प्रधानतासे प्रतीति है। चतुर्थ भंगमें अवक्तव्यपनेकी प्रधानतासे प्रतीति है। पंचम भंगमें अर्थात् स्यात अस्ति अवक्तव्य इस विकल्पमें सत्व सहित अवक्तव्यत्वकी प्रधानतासे प्रतीति है। छटे भंगमें अर्थात् स्यात् नास्ति अवक्तव्य इसमें असत्वसे सहित अवक्तव्यपनेकी प्रतीति है और ७ वें भंगमें अर्थात् स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य इनमें क्रम और अक्रमसे सत्वासत्वधर्मयुक्त अवक्तव्यपनेकी प्रतीति है। तो यों सातों भंगोंमें यद्यपि तीन भंग तो हैं स्वतंत्र अस्ति नास्ति और अवक्तव्य और चार भंग हैं संयोगी, तो जैसे उन तीन स्वतंत्र भंगोंमें स्वतंत्र धर्म की प्रतीति है इसी प्रकार इन संयोगी भंगोंकी भी प्रधानतासे प्रतीति होती है।

विधि प्रतिषेधरूप वचनोंमें वक्तव्यताकी सुप्रसिद्धि होनेसे वक्तव्यत्वनामक अन्य भंगके प्रसंग होनेकी आपत्तिका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि जैसे अवक्तव्यपनेको एक धर्म प्रथक् माना है स्यात् अवक्तव्य, ऐसा कहकर तो फिर वस्तुमें वक्तव्य नामका भी एक ८ वाँ धर्म मानना चाहिए। जैसे वस्तु स्यात अवक्तव्य है इस ही प्रकार वस्तु स्यात् वक्तव्य भी है तब वक्तव्य नामका एक ८ वाँ भंग और मानना चाहिए फिर सप्तभंगीका नियम न रहा कि इसमें सात ही भंग अथवा धर्म हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह बात कहना युक्त नहीं है कारण यह है कि वक्तव्य है यह तो सामान्य कथन है और स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति स्यात् अस्ति नास्ति ये वक्तव्यके ही विशेष कथन हैं। यह कहा जाने योग्य है यह अर्थ तो है वक्तव्यका और उस हीको विशेषरूपमें कह दिया किस प्रकार वक्तव्य है सो उस वक्तव्यका ही तो विशेष अर्थ हुआ ना भंगोंमें स्यात अस्ति, स्यात नास्ति आदि रूपसे जो कहा गया है उससे वक्तव्यपनेकी ही तो प्रसिद्धि हुई है। स्यात् वक्तव्य इतना कहा तो इसका अर्थ है सामान्यरूपमें वक्तव्यपना। अब सामान्यरूपसे वक्तव्यपनेको ही विशेषरूपसे वक्तव्यपनेमें रख दिया है। अवक्तव्य भंगको छोड़कर जहाँ जहाँ भी अन्य कुछ धर्म बताये

Version 1

गए हैं वे सब वक्तव्यत्वसे ही तो सम्बन्ध रखते हैं। इस कारण वक्तव्यनामको ८ वां भंग कहनेकी यहां कोई आवश्यकता नहीं है।

वक्तव्यत्वनामक धर्म मान करके भी सप्तभंगिताके नियमके व्याघात का अभाव—अथवा मानलो दो धर्मोंकी प्रसिद्धि कि वक्तव्य धर्म भी है अवक्तव्य धर्म भी है, तो अब ये दो स्वतंत्र धर्म हो गए, स्यात् वक्तव्य, स्यात् अवक्तव्य, तो जैसे अस्ति नास्ति ये दो धर्म होनेके कारण उस प्रसंगमें सप्तभंगी बनती थी तो अब यहाँ वक्तव्य और अवक्तव्य इन दो धर्मोंको कहकर इसके प्रसंगमें सप्तभंगी बन जायगी तो एक नई सप्त भंगी बन गयी फिर अब उलाहना ही कुछ न रहा जैसे कि स्यात नित्य है स्यात अनित्य है, ऐसे दो धर्म कहकर उनकी सप्तभंगी कहते हैं। स्यात् एक, स्यात् अनेक ऐसा कहकर उनकी सप्तभंगी बनती है। स्यात अस्ति, स्यात नास्ति ऐसा कहकर इसकी सप्तभंगी बनती है इस ही प्रकार स्यात् अवक्तव्य स्यात वक्तव्य ऐसा कहकर इसकी सप्तभंगी बन जायगी। तो इन दोनोंमें विधि और प्रतिषेध कल्पना करके जैसे कि सत्त्व और असत्त्वकी विधि प्रतिषेध कल्पना करके सप्तभंगी बनायी तो वैसे ही इसकी दूसरी सप्तभगी बन जायगा। तो सप्त प्रकारके धर्म होते हैं इस नियम का घात तो नहीं हुआ। इस प्रकरणमें यह बात कही गई कि स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति जो प्रमुख प्रतिपादित धर्म हैं उनमें वक्तव्यपना आ गया अतएव वक्तव्य नामक ८ वां भंग नहीं मानना पड़ता। और कदाचित यही हठ करके कोई पूछे कि इसका तो वक्तव्य शब्द कहकर ही भंग बताओ तो अब यहां दूसरी सप्तभँगी बन जायगी। स्यात वक्तव्य, स्यात अवक्तव्य, स्यात वक्तव्य अवक्तव्य और स्यात उभयथा अवक्तव्य ये चार भंग हुए फिर स्यात् वक्तव्य उभयथा अवक्तव्य, स्यात् अवक्तव्य उभयथा अवक्तव्य, स्यात् वक्तव्य अवक्तव्य, उभयथा अवक्तव्य तो इसकी सप्तभंगी न्यारी बन गई। बन जाय अलग कोई भी सप्तभंगी लेकिन यह नियम सर्वत्र रहा कि सप्तभंगीके विषयमें ७ धर्मका ही नियम है। और जब ७ प्रकारके धर्म भी नियमसिद्ध होते हैं तो यह भी सिद्ध हुआ कि यहाँ ७ प्रकारकी ही जिज्ञासा सम्भव है। जब ७ प्रकारकी जिज्ञासा बनी तो प्रश्न भी ७ तरहके होंगे। संशय भी ७ प्रकारसे ही हो सकेगा तो इस प्रकार ७ प्रकारके वाक्यके नियमका कारण हैं ये ७ धर्म।

सप्तभंगीके लक्षणमें "एकवस्तुनि" इस पदका महत्त्व—उक्त प्रकार सप्तभंगी के कथनसे यह सिद्ध हुआ कि एक वस्तुमें विना विरोधके प्रश्नके अनुसार विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करनेको सप्तभंगी कहते हैं। सप्तभंगीका यह निष्कर्ष वाला लक्षण हुआ एक वस्तुमें बिना विरोधके प्रश्नवशसे विधि और प्रतिषेधकी कल्पना होना सप्तभंगी है। एक वस्तुमें सप्तभंगी बनती है इस प्रकार एक वस्तुमें ऐसा विशेषण देनेसे यह सिद्ध हुआ कि एक वस्तुके आश्रय ही विधिप्रतिषेधकी कल्पना करना अनेक वस्तुओंके आश्रयसे विधिप्रतिषेधकी कल्पना न करना, जैसे स्यात् नित्य है जीव स्यात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक नही है पुद्गल यों अटपट आश्रय व धर्म और स्यात जीव नित्य है, स्यात पुद्गल नित्य नहीं है, यों अटपट धर्म और आश्रव यों दो वस्तुवोंमें विधिप्रतिषेधकी कल्पना से सप्तभंगी नहीं बनती। जीव है ऐसा कहकर उस जीवमें अस्तित्व निरखा जा रहा है। और, जीव परचतुष्टयसे नही है ऐसा कहकर जीवमें नास्तित्व निरखा जा रहा है यहाँ अपेक्षा तो यद्यपि अन्य वस्तुवोंकी हो गई, अर्थात् जो जीव नहीं हैं ऐसे अन्य पदार्थोंके चतुष्टयकी अपेक्षासे नास्तित्व कहा है। तो भी नास्तित्व तो उस एक ही वस्तुमें सिद्ध किया जा रहा है। कही एक ही वस्तुमें और उस हीके अंश अंशीकी अपेक्षा अस्तित्व नास्तित्व कहा जाय तो वह भी एक वस्तुमें सप्तभंगी है और विवक्षाकी वजहसे वहाँ स्वपरकी सप्ततिपक्षताकी व्यवस्था है। जैसे अखण्ड क्षेत्रकी अपेक्षासे जीव है ऐसा कहा अर्थात् जीव अपने समस्त प्रदेशोंमें व्यापक होकर एक अखण्ड है। तो अखण्ड क्षेत्रकी अपेक्षा जीव है यह एक भंग हुआ। इसका प्रतिपक्ष हुआ खण्ड क्षेत्र, अर्थात् जीव असंख्यात प्रदेशी है, उसके यों खण्ड मनमें लाकर प्रदेश नानात्वकी कल्पना करके जीव सोचा जानेपर अखण्डक्षेत्रके रूपसे सोचा गया जो जीव है वह नही है। असंख्यात प्रदेशके रूपसे जीव ऐसा सोचा गया है वह अन्य प्रकार है, तो अब यहां मुकाबलेमें दो धर्म आये। अखण्ड क्षेत्रकी अपेक्षासे जीव है और असंख्यात प्रदेशकी अपेक्षासे जीव नहीं है। तो यहाँ एक ही वस्तुमें एक ही वस्तुके अंशी अंशका विभाग करके उनका परस्पर प्रतिपक्ष बनकर अस्तित्व नास्तित्व सिद्ध किया है। और, यहाँ जीव चतुष्टयसे है, परचतुष्टयसे नहीं है इसमें भंग तो एक ही वस्तुमें किया जा रहा है। नास्तित्व भी उस जीवमें देखा जा रहा है, अपेक्षा जरूर स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी है, पर वस्तु एक ही रही, जिसमें धर्म सिद्ध कर रहे हैं। तो एक वस्तुमें विधिप्रतिषेधकी कल्पना करना, ऐसा कहनेसे अनेक वस्तुमें विधिप्रतिषेधकी कल्पना करनेका खण्डन हुआ। अर्थात् अनेक वस्तुओंमें किसीकी विधि सिद्ध कर रहे किसी वस्तुमें प्रतिषेध सिद्ध कर रहे और उनका मिलकर सप्तभंग बन जाय ऐसा सप्तभंगीका नियम नहीं है।

सप्त भंगीके लक्षणमें "विना विरोध" इस पदका महत्त्व—सप्तभंगीके लक्षणमें "अविरोधेन याने बिना विरोधके" ऐसे शब्द देनेसे यहाँ प्रत्यक्षादिकविरुद्ध तत्वकी विधिप्रतिषेध कल्पनाका निराकरण किया गया है। जो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे विरुद्ध है उसके सम्बन्धमें विधिकी प्रतिषेधकी कल्पना करनेसे सप्तभंगीकी मुद्रा नहीं बनती। जैसे कहा कि अग्नि ठंडी है। अब उसके बारेमें कल्पना करी जाय कि अग्नि स्यात ठण्डी नहीं है तो प्रत्यक्षादिसे विरुद्ध धर्मोंमें विधिप्रतिषेधकी कल्पना नहीं बनती। दृष्टिभेदसे धर्मोंमें विरुद्धता है। पर उस वस्तुमें अविरुद्ध रूपसे धर्मोंको रहना चाहिये तब उसमें सप्तभंगी बनती है। जैसे जीव स्यात् नित्य है, स्यात् अनित्य है तो यहाँ नित्यपना द्रव्यदृष्टिसे है अनित्यपना पर्यायदृष्टिसे है। तो दृष्टिभेदसे तो परस्पर वे विरुद्ध हैं, द्रव्यदृष्टिमें अनित्यपनेका विरोध है पर्यायदृष्टिमें नित्यपनेका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विरोध है, लेकिन जिस एक वस्तुमें नित्यपना और अनित्यपना सिद्ध कर रहे हैं उस वस्तुमें वे दोनों बिना विरोधके रह रहें हैं। याने जीव नित्य भी है अनित्य भी है। नित्य होनेका और अनित्य होनेका जीवमें विरोध नहीं है, दृष्टिमें विरोध है, द्रव्यदृष्टिमें अनित्यपनेका विरोध है, पर्यायदृष्टिसे नित्यपनेका विरोध है। किन्तु एक वस्तुमें दोनोंका विरोध नहीं है। यों तो कथंचित विरोध है और कथंचित् अविरोध है लेकिन प्रत्यक्षसे ही जो विरुद्ध हों धर्म उनके सम्बन्धमें एक वस्तुमें विधिप्रतिषेधकी कल्पना करके सप्तभंगी बनायी जाय तो वह नहीं बन सकती है स्पष्ट व संकेतरूपसे इस तरह नयोंका और प्रमाणका वर्णन करनेके बाद उनके सप्तभंगीकी यह व्यवस्था बताई गई है।

पत्रलक्षणकी जिज्ञासा और पत्रलक्षण विचारका सूत्रमें संकेत—परीक्षा मुखसूत्रमें जो कुछ वर्णन करनेकी बात थी वह इस सूत्रसे पहिले सब आ चुकी थी। इस ७४ वें सूत्रमें सम्भव अन्य तत्त्व भी विचार करना चाहिए ऐसा कह कर नयका विवेचन और नय सप्तभंगी और प्रमाण सप्तभंगीकी बात कही। अब इसी प्रसंगसे सम्बन्धित यह भी एक जिज्ञासा बनती है कि इस सूत्रसे पहिले जो जय पराजयकी व्यवस्था बतायी गई है और उस व्यवस्थाका सम्बन्ध चतुरंगसे है अर्थात् वादी, प्रतिवादी सभासद, और सभापति ये चार अंग हुए बिना वाद नहीं बनता, जय पराजयकी व्यवस्था होती है। वादी और प्रतिवादी अपना अपना मंतव्य रख रहे हैं, तो उनमें किसकी जय हुई और किसकी पराजय हुई यह निर्णय क्या वादी प्रतिवादी दोनों मिलकर करेंगे? सभासदोंको करना है। तो सभासद भी चाहिएं, पर सभासद अनेक बैठे हैं, वादी प्रतिवादी अपना मंतव्य रख रहे, एक दूसरेके कथनमें दूषण उपस्थित करते हैं, पर निर्णायक सभी बन जायें तो निर्णय हो ही नहीं सकता, इसलिए एक सभापति निर्णायक चुना जाता है। अथवा कोई दो तीन निर्णायक चुन लें, अर्थात् निर्णायक सभासद वादी और प्रतिवादी ये चार हों तो वहाँ वाद होता है ऐसा कथन पहिले किया गया था। तो वह चतुरंङ्ग वाद पत्रके आलम्बनकी अपेक्षा रखता है पत्र का अर्थ है सामान्यतया अपना मंतव्य जिन वाक्योंमें उपस्थित किया जाता है वे वाक्य चूँकि यह दार्शनिक ग्रन्थ है तो यहां पत्रमें विशेषता होनी चाहिए अनुमान प्रयोगकी, हेतु, दृष्टान्त, प्रतिज्ञा आदिककी। तो जिस कथनमें अनुमानके अवयव घटित किए गए हों और व्यवस्थित भाषामें गूढ पदोंमें बात रखी गयी हो जो वक्ताका अभिप्राय साधे उस निबन्धको पत्र कहते हैं। तो चतुरंगवाद पत्रके आलम्बनकी अपेक्षा रखता है। इस कारण पत्रका लक्षण अवश्य कहना चाहिए, क्योंकि जब तक पत्रके स्वरूपका ज्ञान नहीं किया जाता तब तक उसका आलम्बन भी नहीं हो सकता। और, अविज्ञान स्वरूप पत्रका आलम्बन जयकी व्यवस्थाके लिए समर्थ नहीं है इस कारण पत्रका लक्षण भी अवश्य कहना चाहिए। ऐसी जिज्ञासा होनेपर इस सूत्रमें ही उसके वर्णनका संकेत मिलता है। इस रूपमें कथन करते हैं कि यह जो ७४ वाँ सूत्र कहा है कि सम्भवत:

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्यत् विचारणीयं, सम्भव होने वाले अन्य अन्य भी विषय विचारणीय हैं। तो यहाँ सम्भवत् विषय पत्र स्वरूप है। अन्यत् शब्दसे यहाँ पत्र लक्षण ग्रहण करना और उस पत्र लक्षणका विचार भी करना चाहिए।

पत्रका लक्षण- पत्रका लक्षण है कि जो वक्ताके अभिप्रायमें आये हुए पदार्थका साधन करे और निर्दोष व गूढ पद जिसमें भरे हों जिसमें अवयवके लक्षण प्रसिद्ध हों उस वाक्यको पत्र कहते हैं। पत्र मायने वाक्य, ऐसा वाक्य कि जो वाक्य वक्ताके अभिप्रायको प्रकट करे ऐसा वाक्य जिसमें निर्दोष और गूढ़ पद. गूढ़ पदके मायने है कि जिस पदका जन साधारण जल्दी अर्थ न लगा सकें, जिससे गूढ अर्थ भरा हो और जिसमें अनुमानके अवयव भी प्रसिद्ध होते हों वह वाक्य पत्र कहलाता है। पत्रके इस लक्षणमें तीन विशेषण दिये गए हैं। अपने अभिप्रेत अर्थका साधने वाला हो एक विशेषण दूसरा विशेषण है निर्दोष और गूढ़ पदोंसे भरा हुआ हो, तीसरा विशेषण है जिसमें अनुमानके अवयव प्रसिद्ध होते हों। तो इन तीन विशेषणोंके सम्बन्धमें यों विचार करना है कि इनमेंसे कोई विशेषण यदि कम कर देते, उपस्थित न करते तो पत्रका लक्षण नहीं बनता था। मानो कि गूढ़ पद भी है, अवयवकी बात भी रख रहे हैं लेकिन वक्ताके अभिप्रेत अर्थका साधने वाला नहीं है तो वह पत्र नहीं कहला सकता। जो वाक्य वक्ताके अभिप्रेत अर्थको साधने वाला नहीं है वह चाहे दुष्ट वाक्य हो, अप शब्दोंसे भरा हुआ हो अथवा निर्दोष वाक्य हो, सभ्य शब्दोंसे भरा हुआ स्पष्ट रूप हो अथवा किसी भी रूप हो वह पत्र नहीं कहला सकता। क्योंकि पत्रका उद्देश्य तो यह है कि वक्ताके अभिप्रायको ज्ञात कर लेना। जब पत्र वक्ताके अभिप्रेत अर्थको सिद्ध नहीं करता तो वह पत्र नहीं कहला सकता। इसी तरह वक्ताके अभिप्रायको भी सिद्ध करे, निर्दोष गूढ़ पद भी हों लेकिन अवयवकी बात नहीं है तो वह भी पत्र नहीं कहलाता। जैसे काव्य साहित्यमें अनेक कथन आते हैं, उनमें अवयवकी बात नहीं है, तो वह काव्य जिसकी क्रिया भी गूढ़ है, पद भी गूढ़ है, फिर भी पत्र नहीं कहलाता। इसी प्रकार अवयवकी भी बात हो, अपने अभिप्रायको भी सिद्ध करता हो, लेकिन गूढ़ पद नहीं है सीधे साधारणरूपसे रखा गया है वह भी पत्रके लक्षणमें नहीं आता, इस कारण पत्रका यह लक्षण समीचीन है कि जिसमें अवयव प्रसिद्ध हों, अपने अभिप्रेत अर्थको साधने वाला हो और निर्दोष गूढ़ पद जिसमें भरे हों उस वाक्यको पत्र कहा करते हैं।

वर्णपदसमूहात्मक वाक्यको पत्र नामसे व्यपदिष्ट किये जानेकी अशक्यताका प्रश्न- शंकाकार कहता है कि पहिले कहे गए विशेषणोंसे युक्त वाक्यको पत्र नाम कैसे दिया जा सकता है क्योंकि वाक्य तो इन्द्रियसे जाने गए पदसमूहके विशेष रूप हैं, अर्थात् जिन विशेषणोंसे विशिष्ट पदसमूहको, वाक्यको पत्र कहा है वे तो भाषावर्गणाके परिणमन हैं और श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा जाननेमें आते हैं उन पदोंका समूह वाक्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है किन्तु पत्र तो उससे विपरीत आकार वाला है। पत्र जैसे कि कागजोंमें कोई निबंध लिखा हुआ होता है तो वह श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा जाने गए पद समूह रूप नही है। उनका आकार ही भिन्न है। वे नेत्र इन्द्रियके द्वारा देखे जाते वाले हैं और मनसे उनका संकेत समझा जाता है, सो पत्रका तो विपरीत आकार है,तब फिर वर्णपद रूप परिणत श्रोत्रेन्द्रियसमधिगम्य वाक्योंका नाम पत्र कहा है वह कैसे सम्भव है। ऐसा तो नही हो सकता कि जो जिससे बिल्कुल भिन्न है वह उसके द्वारा व्यपदेश किये जानेके लिए शक्य हो। यदि भिन्न पदार्थ भी भिन्नके द्वारा व्यपदिष्ट किया जाने लगे तो इसमें बड़े प्रसंग आयेंगे। घटको पट नामसे भी कह दिया जाय, क्योंकि अब तो जिससे भिन्न है उसके नामसे भी उसको कहे जानेकी बात मान ली है। जैसे कि वाक्य श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा समधिगम्य हैं और पत्र उससे विपरीत आकार वाला है लेकिन अब तो यहाँ वाक्य और पत्र भिन्न भिन्न होनेपर भी वाक्यको पत्र नामसे कहा जाने लगा है। तो भिन्न वस्तुको भिन्नके द्वारा व्यपदिष्ट नहीं किया जा सकता और इसी कारण यह यहां आपत्ति आती है कि प्रसिद्ध अवयव वाले अपने अभिप्रेत अर्थको सिद्ध करने वाला निर्दोष गूढ़ पदसे भरा हुआ वाक्य पत्र कहलाता है तो उस वाक्यका पत्र नाम कैसे रखा जा सकता है।

उपचरितोपचारसे वाक्यको पत्रनामसे व्यपदिष्ट किये जानेका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि उन पदसमूहरूप वाक्योंका पत्र नामसे उपचरितोपचारसे है जो वाक्य वर्णोंके समूहरूप पदोंके समूहरूप बना हुआ है श्रोत्र-इन्द्रियके मार्गमें आता है उस वाक्यका लिपिमें उपचार किया गया है। जैसे वाक्य मुखसे बोला जाता है लोग कानोंसे श्रवण करते हैं, किन्तु उन्हीं वाक्योंको ग्रन्थमें पत्र में लिख दिया जाय तो वह लिखा हुआ भी तो वाक्य कहलाता है। वर्णात्मक वाक्य का लिपिमें उपचार किया गया है। और यह उपचार विरुद्ध नहीं है। समस्त लौकिक जन इसी व्यवहारके द्वारा वाक्योंको पढ़ते हैं, समझते हैं। बड़े बड़े व्यापार भी चलाया करते हैं, तो जो भाषावर्गणा जातिके परिणमन है वर्णसमूहरूप हैं। पदसे जिनका संदर्भ बना है ऐसे ही वाक्योंका लिपिमें उपचार किया गया है। लिपिमें उपचार किया गया है। क्योंकि पत्रमें लिखे हुए वाक्यका लोग व्यवहार करते हैं वह वाक्यका पत्रमें उपचार करते है और वह पत्रमें ही स्थित है। लोग भाव समझते हैं और भाव समझकर उसके अनुकूल प्रवृत्ति भी किया करते हैं, इस कारण पत्रमें उपचरितोउपचारसे वाक्यका नाम पत्र कहा गया है। यहां यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो जिससे अन्य है यह उसके द्वारा उपचारसे या उपचरितोपचार से व्यपदिष्ट नही किया जा सकता है, क्योंकि भिन्न–भिन्न पदार्थोंका भी किसी सादृश्य के कारण उपचारसे या उपचारितोपचारसे भिन्न पदार्थवाचक शब्दसे व्यपदेश किया ही जाता है। जैसे शक्र मायने इंद्र है किन्तु किसी पुरुषका वैभव देखकर उसे भी शक्र कह देते हैं लोग तो यह उपचार कथन हुआ ना, तो शक्रसे भिन्न है पुरुष तो भी उप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चारके बलसे उसको शक्र कहा जाता है और फिर उस पुरुषकी मूर्ति बना दे काष्ठ आदिकमें तो उसे भी लोग शक्र कहेंगे, तो वह उपचरितोपचारसे है। जैसे राम रावण के समयमें एक राजाका नाम इन्द्र था और उस इंद्र राजाने अपनी ठाठ बाठ रचना भी स्वर्गकी तरह या इन्द्र व्यवस्थाकी तरह बना रखा था, अपने नगरमें रहने वाले लोगोंका नाम देव रखा। नगरके चारों दिशाओंमें जिन्हें पहरेदार नियुक्त किया, ऐसे बड़े विशिष्ट राजाओंको यम, वरुण, कुबेर आदिक नाम दिए गए। जो पाप करनेवाले पुरुष हुआ करते थे उन्हें नरकवासकी दण्ड व्यवस्थाकी और उनका नरक भी यहीं था कि पृथ्वीमें बहुत नीचे बहुत लम्बे चौड़े कुवेकी तरह एक पातालसा बनाया और उसमें उसे भेज देते थे। तो उस इंद्रने अपनी व्यवस्था भी बड़े ऐश्वर्यको प्रसिद्ध करने वाली बनाई पूरी और नाम भी उसका इंद्र था तो अब वह राजा जो इद्र नामसे कहा गया तो आखिर वह इंद्रसे भिन्न ही तो है। इंद्र तो रहता है स्वर्गोंमें, वैक्रियक शरीरवाला है, उसकी ऋद्धि, उसका वैभव ही पृथक है, लेकिन इस राजाको जो इंद्र कहा जाने लगा तो वह उपचारसे ही तो कहा गया, भिन्न होनेपर भी उपचारसे उस नामसे व्यपदेश किया जा सकता है और फिर उस इंद्र राजाकी मूर्ति बना दी जाय, स्टेचू बनने पर उसे भी लोग इंद्र कहेंगे। तो उस स्टेचूको इन्द्र कहना यह उपचरितोपचारसे है, अर्थात् राजा इंद्रमें इंद्रका उपचार हुआ और उपचरित इंद्रका उस काष्ठमूर्तिमें उपचार हुआ तो उपचरितोपचारसे भी इंद्रका नाम प्रसिद्ध किया जा सकता है। तो यह बात भी न रही कि जो जिससे भिन्न है वह उस स्वभावके द्वारा व्यपदिष्ट किए जाने में सर्वथा अशक्य हो। उपचरितोपचारसे अथवा उपचारसे भिन्नका भी भिन्नके नाम से व्यपदेश किया जा सकता है।

वाक्यको मुख्यतया पत्र नामसे व्यपदिष्ट किये जा सकनेका वर्णन — अथवा पत्र शब्दका निरुक्त्यर्थ अगर देखें तो प्रकृत वाक्यका ही मुख्यरूपसे पत्रव्यपदेश होता है। पत्रका अर्थ है— 'पदानि त्रायन्ते गोप्यन्ते रक्ष्यन्ते परेभ्यः स्वयं विजिगीषुणा यस्मिन् वाक्ये तत्पत्रम्" अर्थात् स्वय विजिगीसु पुरुषके द्वारा पद अन्य लोगोंसे याने प्रतिवादियोंसे रक्षित किये जाते हैं जिस वाक्यमें उसे पद कहते हैं। स्वयं जीतकी इच्छा करने वाला वादी पदोंको इस तरहसे रखता हैं कि प्रतिवादियोंसे वे रक्षित रहें, प्रतिवादी उन्हें सहसा जान न सके और उन पदोंमें कोई दोष न दे सकें, इस तरह पदोंकी रक्षा किए जानेका नाम है पत्र। इस व्युत्पत्तिके कारण पत्र शब्दका सीधा वही अर्थ हुआ जो कि पत्रके लक्षणमें कहा गया है। पत्रे अपने अभिप्रत अर्थका साधक होता है, उसके बिना तो बात करना ही व्यर्थ है और वह प्रसिद्ध अवयव वाला है, जिसमें युक्ति नही, हेतु नही, उसकी कोई महिमा भी नहीं है। साथ ही उसमें निर्दोष एवं गूढ पद हो कि जिसको हर एक पुरुष न समझ सके और उसका भाव गुप्त रह सके, सुरक्षित रह सके उसका नाम पत्र है। तो पत्रकी व्युत्पत्तिसे जो भाव आता है, वह भाव पत्रके लक्षणमें समाया हुआ है, क्योंकि यहाँ प्रकृति प्रत्यय आदिकके गोपनसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदका गोपन है अर्थात् पद कहलाता है प्रकृति और प्रत्ययका मेल। जब प्रकृति अलग है तो वह पद नहीं है, प्रत्यय अलग है तो वह पद नहीं है। जैसे हिन्दीमें कहते हैं— गायको लावो ! तो 'गाय' केवल इतना कहा जाय तो वह प्रकृति हुई, पद नहीं हुआ और 'को' केवल इतना ही कहा जाय तो वह प्रत्यय हुआ, पद नहीं हुआ। प्रकृतिमें जब प्रत्यय मिलता है तब वह पद कहलाता है। तो प्रकृतिका गोपन हो, प्रत्ययका गोपन हो सुरक्षित रहे, सहसा कोई जान न सके, कोई साधारण जन जानकर उसको बिगाड़े नहीं, उसका महत्त्व न घटाये। तो इस प्रकार जब प्रकृति और प्रत्ययका गोपन होता है तो पदोंका भी गोपन होता है और ऐसा गोपन, ऐसी सुरक्षा, ऐसा बचाव परोंसे याने प्रतिवादियोंसे कर सकना सम्भव ही है। यद्यपि वह प्रतिवादी इतना विद्वान है कि पदोंके स्वरूपका उसके निर्णय है और उन पदोंके द्वारा जो कुछ तत्त्व कहा जाता है उसका भी निर्णय है, ऐसे भी विद्वानोंसे जो बचाव कर लिया जाता है, पदोंकी रक्षा कर ली जाती है जिस वाक्य प्रयोगमें, उस हीका नाम पत्र है। तो इस प्रकार पत्रका निर्दोष लक्षण यह बना कि जिसमें अवयव प्रसिद्ध हो, वक्ताके अभिप्रेत अर्थका जिसमें साधन बने, जो निर्दोष और गूढ़ पदोंसे भरा हुआ हो, जिसमें किसी अन्य प्रमाणोंसे बाधा न आये उसे पत्र कहते हैं।

दो अवयव वाले पत्रसे साध्यसिद्धि होनेका एक उदाहरण—उक्त प्रकार तीन विशेषणोंसे लक्षित पत्रके अवयव अनिवार्यरूपसे दो ही प्रयुक्त किये जाते हैं, क्योंकि दो ही अवयवोंके प्रयोगसे साध्यकी सिद्धि हो जाती है। पत्रमें अनुमानकी प्रधानता है और अनुमानके अङ्ग हैं पाँच—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। इन ५ अवयवोंमेंसे कहीं केवल दोका ही प्रयोग किया जाता है और उन दो के प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है। अब पत्रका एक उदाहरण देते हैं। जिसमें दो अवयवोंसे ही अनुमानकी सिद्धि की गई है और जिसका गूढ़ अर्थ है। जैसे एक छंद में कहा गया है—स्वन्तभासितभूत्याद्यन्तात्मतदुभान्तवाक्। परान्तद्योतितोद्दीप्तमितीतत्वात्मकत्वतः॥ इस पूरे श्लोकका भाव यह है कि समस्त पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं प्रमेय होनेसे। समस्त पदार्थ इस शब्दको कहा गया है "उभान्तभाक्"। उभान्तभाक्का अर्थ है सब। यह अर्थ कैसे निकला ? सुनिये ! व्याकरणमें सर्वनामके प्रकरणमें एक शब्दसंग्रह है—सर्व विश्व उभ उभय इतर इतम ⋯ ⋯ आदिक, तो इस क्रम वाले शब्दोंमें उभ है अन्तमें जिसके ऐसा वचन (उभान्तवाक्) क्या है ? विश्व। सर्वविश्व उभ। उभ है अन्तमें जिसके, ऐसा वचन मायने विश्व। मतलब यह है कि जैसे किसी पुरुषका नाम नागकुमार रखा तो यह सीधा कह सकते हैं कि यह नागकुमार है, पर ऐसा न कहकर एक विद्याकी और पत्रकी विशिष्ट भाषामें यदि यह कहा जाय विद्युदान्तवाक्, असुर नाग विद्युत् सुपर्ण अग्नि वात स्तनित उदधि द्वीप दिक्कुमार ये नाम हैं यहाँ विद्युत है अन्तमें जिसके ऐसा वचन क्या है नाग अर्थात् शब्द पड़ा है नागके बाद तो विद्युदांतवाक् इसका अर्थ हुआ नागकुमार। तो यह पत्रकी चर्चा चल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रही है। पत्रके शब्द बहुत गूढ़ हुआ करते हैं जिनको जनसाधारण नहीं जान सकते और वे विद्वानोंके वाद विवादके समय बोले जाते हैं। विद्वान भी चकरा जायें, ऐसी क्लिष्ट भाषामें अनुमानसे अवयवोंके साध्यकी सिद्धिकी बात रखना यह पत्र कहलाता है। सो यहाँ अनुमान बनाया है कि उभान्तवाक अर्थात् सारा विश्व स्वान्तभासित-भूत्याद्यन्तात्मतत् है परान्तद्योतितद्दोप्तीमतीतत्स्वात्मकत्व होनेसे। यहाँ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक है यह अर्थ कैसे निकला ? सो सुनिये यह शब्द रचना है कठिन रचना है, ध्यानसे सुनिये, स्वान्तका अर्थ है सु का अन्त। व्याकरणमें जहाँ उपसर्गोंके नाम दिये गए हैं परा अप सम अनु अव निस निर दुस् दुर् वि आङ नि अधि अपि सु उत् अभि प्रति परि उप। इन नामोंमें यह देखेंगे कि सु के अन्तमें कौन सा नाम दिया है ? उत्, सु उत् इससे सु का अन्त क्या हुआ ? उत। तो स्वान्तका अर्थ हुआ उत्। उत् से जो भासित है, मायने उत् उपसर्ग युक्त है, ऐसी भूति अर्थात् उद्भूति। कहना तो था एक उद्भूति शब्द और उसे कहा है स्वान्त भासितभूति। सु का अन्त है उत् और उससे भासित है भूति अर्थात् उद्भूति। वह उद्भूति है शुरूमें जिसके ऐसे वे तीन अर्थात् उत्पादव्यय ध्रौव्य वे ही हैं अन्त जिसके, धर्म जिसके उसे कहेंगे उद्भूतिव्ययध्रौव्य धर्म। और, वे ही हैं आत्मा मायने स्वरूप, उनको जो तनोति याने विस्तृत करता है अर्थात् उस स्वरूपका जो प्रकाश करता है उसे कहा है स्वान्तभासितभूत्याद्यव्यन्तात्मतत् मायने उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक।

पत्रमें गूढपदप्रायताका स्थान—कुछ लोग यहाँ सोच सकते हैं कि सीधा ही क्यों न कह दिया ? तो जब तक गूढ़ पद न होंगे तब तक उसको पत्र न कहा जायगा, और यहाँ पत्रका विचार चल रहा है पत्रमें तीन विशेषतायें होनी चाहिएँ। वादविवाद के समय एक वक्ता प्रतिवादीसे कुछ बोलता है तो उसके उस बोलमें हेतु आना चाहिए, उदाहरण होना चाहिए, साध्य होना चाहिए, पक्ष होना चाहिए याने अवयवोंका प्रयोग होना चाहिए। अनुमानके बलपर ही वादविवाद चलता है तो अनुमानका प्रयोग करे वक्ता तो इस तरह करे कि जिसके शब्द ऐसे हों कि दूसरे लोग उसमें दिमाग भी गड़ायें तो भी आसानीसे समझमें न आ सके, इस तरहकी भाषा उस वादविवादमें बोलना इसे कहते हैं पत्रका आलम्बन लेना, यदि सीधे सादे शब्दोंमें ही बोल दिया तो भी पत्रका नाम न आ सकेगा। तो पत्रमें अर्थात् बोलचालके वाक्य प्रयोगमें अनुमानके अवयव ध्वनित होना चाहिए, और निर्दोष गूढ़ पदसे भरा हुआ होना चाहिए, जिसमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे बाधा भी न आना चाहिए। इन तीन विशेषणोंसे युक्त पत्र हुआ करता है, तो उस सम्बन्धमें यहाँ यह कहा जा रहा है कि पाँचों ही अवयव हों तब नाम पत्र पड़े ऐसी बात नही है। हाँ दो अवयव अवश्य होने चाहिएँ प्रतिज्ञा और हेतु, क्योंकि प्रतिज्ञाकी बात बोले बिना यह कैसे जाना जायगा कि यह क्या सिद्ध करना चाहता है ? और, हेतु बोले बिना युक्ति भी कैसे जानी जायगी कि किस युक्तिके आधार पर यह अपना साध्य सिद्ध करना चाहता है ? इस कारण प्रतिज्ञा और हेतु इन दोका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहना आवश्यक है, जैसे कोई कहे कि पर्वत अग्निमान है धूमवान होनेसे, तो इसमें दो अवयव बोले गए प्रतिज्ञा और हेतु। पर्वत अग्निमान है यह तो है प्रतिज्ञा, पक्ष और साध्य मिलकर बोलनेको प्रतिज्ञा कहते हैं। और, हेतु है धूमवान होनेसे। अब इस प्रसिद्ध उदाहरणसे समझ सकते हैं कि केवल दो अवयवोंके बोलनेसे ही लोग समझ जाते हैं, जैसे किसी भी पुरुषसे कहते हैं कि देखो यहाँ अग्नि है धुवाँ होनेसे। इतने शब्द सुनकर ही वह सब बात भली भाँति जान जाता है। उसे व्याप्ति बनाकर सुनाने की जरूरत नही, न अनेक उदाहरण देनेकी जरूरत है और न उसको दुहरानेकी जरूरत है। यह बात तो किसी नवीन पुरुषके साथकी जाती है। उसे व्याप्ति दृष्टान्त और प्रतिज्ञाका दुहराना, हेतु साध्यका दुहराना ये सब बातें किसी शिष्यको समझानेके लिए तो कही जाती हैं मगर विद्वानोंको, समझदारोंको ये सब प्रयोग नही किए जाते। तो प्रतिज्ञा और हेतु ये दो ही अवयव प्रयुक्त होते हैं और इन दोसे ही साध्यकी सिद्धि बन जाती है।

दो अवयवोंके प्रयोगवाले पत्रका एक उदाहरण—दो अवयवोंसे सिद्धि होनेके उदाहरणमें यह कहा जा रहा है कि उभान्तवाक् (विश्व) स्वान्तभासितभूत्याद्यन्तात्मतत् (उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक) है, क्योंकि परान्तद्योतितोद्दीप्तितीतत्स्वात्मकत्व होनेसे यहाँ जो हेतु दिया है इस हेतुका अर्थ है, प्रमेयत्व होनेसे। केवल इतने शब्द भी कह सकते थे कि प्रमेयपना होनेसे। उन प्रमेयपनेको इतने लम्बे पदसे बोला गया है ? इस लम्बे पदका यह अर्थ कैसे निकला ? तो प्रत्येक शब्दपर दृष्टि देनेसे समझमें आ जायगा। परान्तके मायने परा है अन्तमें जिसके। उपसर्गोंमें प्र परा इस तरहसे प्रयोग होता है। तो परा जिसके अन्तमें है वह क्या हुआ ? प्र और वही होता है द्योतित मायने उपसर्ग तो परान्तद्योतित इतनेका अर्थ हुआ प्र उससे उदीप्त मिति अर्थात् प्रमिति। प्र से युक्त मिति। प्रमितिका वाचक शब्द यहाँ दिया है—परान्तद्योतितोद्दीप्रमिति अर्थात् प्रमिति उसके द्वारा इत है माने प्राप्त है स्वात्मा जिसकी उसे कहेंगे परान्तद्योतितोद्दीप्तमितीतत्स्वात्मक… अर्थात् प्रमेय यहाँ स्वार्थे क: से क प्रत्यय किया गया है। उसमें त्व शब्द और जोड़नेसे बन गया परान्तद्योतितोद्दीप्तमितीतत्स्वात्मकत्व…यह इसका हेतु है। तो यहाँ यह कहा गया सीधे शब्दोंमें सुनो ! कि समस्त विश्व उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है प्रमेयत्व होनेसे। तो अब इस पत्रमें परख लीजिये कि दो अवयवोंका प्रयोग किया गया है प्रतिज्ञा और हेतु। प्रतिज्ञा तो इतनी है कि सारा विश्व उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है और हेतु है प्रमेयपना होनेसे। तो यहां दृष्टान्त उपनय निगमन आदिकका अभाव होनेपर भी देखो यह हेतु अपने साध्यका प्रतिपादक होगया, और कहा भी है कि प्रतिज्ञा और हेतु ये दो ही अनुमानके अङ्ग हैं। इसके अतिरिक्त जो कुछ और आगे बोलना पड़ता है वह सब शिष्योंको नवीन पुरुषोंको समझानेके लिए बोलना पड़ता है। तो यहाँ जैनशासनने यह समर्थन किया है कि समस्त विश्व उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है प्रमेय होनेसे, जिसको पत्रकी भाषामें वर्णन किया गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पत्रमें अन्यथानुपपत्तिके नियमका बल होनेसे दो अवयवोंकी प्रसिद्धि से अभिप्रेत अर्थकी सिद्धि—पत्र उसे कहते हैं कि जिसमें पद प्रतिवादीसे सुरक्षित रहें, प्रतिवादी उसे आसानीसे न समझ सके और उसमें कोई दोष न दे सके और जिस में कोई बाधा ही न आये और जिसे समझानेके लिए वादी ही स्वयं समझाये जिससे प्रतिवादीकी तोहीनी हो, उसे पत्र कहते हैं। तो इस अनुमानमें अन्यथानुपपत्तिके नियम के बलसे ही हेतु साध्यका गमक हुआ और वह अन्यथानुत्पत्ति यहाँ है ही क्योंकि इस अनुमानमें बताये गये साध्यसे विरुद्ध क्या हुए ? सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य, साध्य है उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक, उससे विपरीत क्या हो सकता सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य ? तो सर्वथा नित्य भी प्रमाणका विषयभूत नहीं है व सर्वथा अनित्य प्रमाण का विषयभूत नहीं है। तो यह अनुमान निर्दोष है बाधारहित है और इसमें केवल दो ही अवयव आये। प्रतिज्ञा और हेतु, और यहीं प्रसिद्धावयवका अर्थ है, जितने अवयवों से वक्ताका अभिप्रेत अर्थ सिद्ध हो उसे ही पत्र कहते हैं। तो अवयव भी प्रसिद्ध हो गए और वक्ताका अभिप्राय भी आ गया और गूढ़ पद भी आ गए, और पदोंमें कोई दोष भी नहीं है और इस पत्रने दो अवयवोंको सिद्धि किया है, तो दो अवयवोंसे अनुमान की सिद्धि होती है, यह सब इस पत्रकथनके द्वारा बताया गया है।

यथासंभव दो तीन चार पांच अवयवोंसे ज्ञातव्य तत्त्वकी सिद्धि बनाने में दिये गये एक पत्रमें उल्लिखित प्रतिज्ञाका वर्णन—पत्रमें दो अवयवोंका होना ही पर्याप्त है। पर कभी कभी शिष्यके अभिप्रायके वशसे शिष्यकी योग्यताके वशसे चूंकि उसे समझाना है तो जिस पद्धतिसे वह समझ सके उस पद्धतिके अनुसरण करने से ३–४–५ अवयव भी पत्र वाक्यमें कहे जाना चाहिए। उसके उदाहरणमें कहते हैं कि—चित्राद्यदन्तराणीयमारेकान्तात्मकत्वत:। यदित्थं न तदित्थं न यथाऽकिञ्चिदिति त्रय:। तथा चेदमिति प्रोक्तौ चत्वारोऽवयवा मता:। तस्मात्तथेति निर्देशे पञ्चपत्रस्य कस्यचित् ॥२॥ इन २ श्लोकोंमें जो अनुमान बताया गया है उस अनुमानमें दो अवयवोंसे भी जानकारी करनेका संकेत है। तीन अवयवोंसे भी जानकारी करनेका संकेत है। चार अवयवोंसे भी जानकारी करनेका संकेत है और ५ अवयवोंसे भी जानकारी करनेका संकेत है। इस अनुमानमें कहा यह गया है कि सारा विश्व अनेकान्तात्मक है प्रमेय होनेसे। इस अनुमानको गूढ़ पदोंमें इस प्रकार बताया गया है कि यदन्तराणीयं चित्रात् आरेकान्तात्मकत्वत:। यदन्तराणीयंका अर्थ है विश्व। यह अर्थ कैसे निकला? तो इस पदमें जो शब्द कहे गये हैं उन शब्दोंको तोड़कर अर्थ देखना है। यदन्तका अर्थ है यत् है अन्तमें जिसके। तो जहां सर्वादिगणका पाठ है व्याकरणमें वहां सर्व विश्व-यत् आदिक सर्वनामका पाठ है। उसमें यह देखलो कि विश्वके बाद यत् आया है। सो यत् जिसके अन्तमें हो वह क्या है ? विश्व शब्द। उसके द्वारा जो राणीय है, शब्दनीय है, कहा जाने योग्य है उसे कहते हैं विश्व। अर्थात लोकालोकात्मक यह सारा विश्व। वह चित्रात् मायने अनेकान्तात्मक है। चित्रात् शब्दसे अनेकान्तात्मक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थ कैसे निकला तो उसकी व्युत्पत्ति कीजिये— चित्रं अतति इति चित्रात् चित्र कहते हैं एकानेकरूपको। जो एक रूप भी है अनेक रूप भी है याने मेचक है, चित्र है, विभिन्न है उसे कहते हैं चित्र और चित्रको जो अतति अर्थात् सतत गमन कराये, गमाये, व्यापे उसे कहते हैं चित्रात् अर्थात् एकानेकरूप व्यापी। जो एक रूपमें और अनेक रूपमें व्यापक रहे उसीको कहते हैं अनेकान्तात्मक। तो इस अनुमानमें पक्ष और साध्य इन दोका अर्थ बता दिया कि पदन्तराणीयं अर्थात् यह सारा विश्व चित्रात् याने अनेकान्तात्मक है।

उक्त प्रतिज्ञाके साधनका वर्णन— अब इसका साधन बताते हैं। यह सारा विश्व क्यों अनेकान्तात्मक है? उसका हेतु देते हैं आरेकान्तात्मकत्वत: याने प्रमेय होनेसे। इस पदका अर्थ प्रमेय कैसे निकला? तो शब्द भिन्न-भिन्न करके उसके अर्थपर दृष्टि कीजिए। आरेका नाम है संशयका। आरेका है अन्तमें जिसके उसे कहते हैं आरेकात न्यायसूत्रमें जहाँ १६ प्रकारके पदार्थोंके नाम दिये गए हैं प्रमाण प्रमेय संशय आदिक. उस पाठमें संशय है अन्तमें जिसके ऐसा शब्द कौन है? प्रमेय। इस पाठमें प्रमेयके बाद संशयका नाम दिया है। सो आरेकान्तका अर्थ हुआ प्रमेय, वह है आत्मा जिसका, स्वरूप जिसका उसे कहते हैं आरेकान्तात्मक और उसके भावको कहते हैं आरेकान्तात्मकत्व। जिसका अर्थ हुआ प्रमेयत्व। सारा विश्व अनेकान्तात्मक है प्रमेयपना होनेसे। यहाँ तक इस अनुमानमें प्रतिज्ञा और हेतु दोका प्रयोग किया गया।

उक्त पत्रमें प्रतिपाद्य शिष्य की पात्रताके अनुसार तीन, चार या पांचों अवयवोंका प्रयोग— कोई पुरुष इन दोंके प्रयोगसे ही अर्थ समझ सकते हैं। अब प्रतिपाद्य पुरुष यदि कुछ अल्प बुद्धिका है तो उसको इन दो अवयवोंमेंसे बढ़कर और कुछ भी कहा जायगा याने तीसरा अवयव उदाहरण नामका कहा जायगा। व्याप्तिपूर्वक दृष्टान्तके कहनेको उदाहरण कहते हैं। इस अनुमानमें प्रतिज्ञा और हेतुके प्रयोगके बाद उदाहरण कहा जा रहा है। जैसे कि सारा विश्व अनेकान्तात्मक है प्रयोगपना होनेसे जो अनेकान्तात्मक नहीं होता है वह प्रमेय भी नहीं होता है। जैसे अकिञ्चित्, अर्थात् जो कुछ नहीं है, असत् है वह अनेकान्तात्मक नहीं और प्रमेय भी नहीं। तो इसमें उदाहरण अवयव और जोड़कर यहां तीन अवयव बताये गए। कोई शिष्य इन तीन अवयवोंके द्वारा साध्यको जान जाता है। जो शिष्य इन तीन अवयवोंसे भी न समझ सके उसको आगे उपनयका भी प्रयोग किया जाता है। जैसे कि सारा विश्व अनेकान्तात्मक है प्रमेय होनेसे। जो अनेकान्तात्मक नहीं है वह प्रमेय भी नहीं है। जैसे कि असत्। और, यह सारा विश्व प्रमेय है। इस प्रकार ये ४ अवयव बताए गए तो किसी पात्रके चार अवयवोंसे भी काम चल जाता है। यदि कोई शिष्य इन चार अवयवोंके प्रयोग करनेपर भी न समझ सका तो उसके लिए ५वें अवयवका भी प्रयोग किया जाता है। जैसे कहा कि यह सारा विश्व अनेकान्तात्मक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है प्रमेय होनेसे। जो अनेकान्तात्मक नहीं होता, प्रमेय भी नहीं होता। जैसे कि अकिञ्चित् असत्, आकाश और यह सारा विश्व प्रमेय है, इस कारणसे अनेकान्तात्मक है यहां अंतमें निगमनका प्रयोग किया गया है, तो कोई शिष्य ५ अवयवोंके प्रयोगसे वक्ता का अभिप्रेत अर्थ समझता है तो पत्रमें कहीं ५ अवयवोंका भी प्रयोग होता है।

उक्त पत्रावतरित अनुमानमें केवल व्यतिरेक व्याप्तिमें अन्यथानुपपत्ति का महान् बल---उक्त अनुमानमें अन्वयव्याप्तिपूर्वक उदाहरण देनेकी गुञ्जाइस नहीं है। कहीं उदाहरण अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेक दृष्टान्त दोनोंका दिया जाता है और कहीं व्यतिरेकका ही दिया जाता है, कहीं अन्वयका ही दिया जाता है। यहाँ अन्वयव्याप्ति नही बन सकती थी। अनुमान है कि सारा विश्व अनेकान्तात्मक है प्रमेय होनेसे। अब यदि अन्वयव्याप्ति बनाते हैं कि जो–जो प्रमेय होते हैं वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं तो इसके लिए अब दृष्टान्त क्या मिलेगा? क्योंकि पक्षमें सारा विश्व कह दिया गया है। अब समस्त प्रमेयको जब पक्ष बनाया गया है तो अन्वयव्याप्तिके लिए कोई पृथक दृष्टान्त नही मिलता। और, इसी कारण यहाँ अन्वयव्याप्ति नही बनती। अन्वयव्याप्ति न भी बने, पर अन्यथानुपपत्तिका जहां नियम पड़ा हुआ है वह अनुमान समीचीन होता है। इस अनुमानमें व्यतिरेक व्याप्ति बताकर अकिञ्चित्का दृष्टान्त दिया है सो अकिञ्जित्का अर्थ क्या है? न किंचित् इति अकिञ्चित् जो कुछ नहीं है। असत् है वह अकिञ्चित् है जैसे खरविषाण, आकाशपुष्प आदिक। अथवा अकिञ्चित्का यह भी अर्थ है कि जो सर्वथा एकान्तवादियोंके द्वारा माना गया तत्त्व है उसे अकिञ्चित् कहते हैं न कुछ जैसे कि सर्वथा एकान्तवादमें माना गया तत्त्व सर्वथा नित्य, सर्वथा क्षणिक सर्वथा एक आदिक रूपसे माना गया तत्त्व न कुछ है, वह अनेकान्तात्मक नही है। अतएव प्रमेय भी नहो है। सत् भी नही हैतो। इस गूढ पदसे भरे हुए अनुमानमें दो अवयवोंसे चार अवयवोंसे और पाँच अवयवोंसे भी समझानेकी बात आयी है और यथायोग्य प्रतिपाद्य शिष्यकी योग्यताके अनुसार ५ अवयवोंमेंसे २का, ३का, ४का और ५का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह पत्रका लक्षण निर्दोषतया सिद्ध हुआ कि जिससे प्रसिद्ध अवयव हो और अपने अभिप्रेत अर्थको जो सिद्ध करने वाला हो, जिसमें निर्दोष गूढ़ पद भरे पड़े हों और अबाधित हों, उसको पत्र कहते हैं।

यौगसिद्धान्ताभिमत पत्रमें उल्लिखित एक धर्मीका निर्देश---अब नैयायिकोंको द्वारा अपने पक्षकी सिद्धिके लिये जो एक सूत्र वाक्य कहा है जिसका उल्लेख अभी ही तुरंत करेंगे उसपर विचार करिये, यह पत्रवाक्य प्रमाण बाधित है। तो अबाधित न हो सकनेसे यह अनुमान वाक्यपत्र संज्ञाको प्राप्त नहीं हो सकता। यौगसिद्धान्तका एक यह अनुमान है कि—सैन्यलङ्भाक् नाऽनन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृदाशैट्‌यतोऽनीटोकनेनलऽचुक् कुलोद्भवो वैषोऽप्य नैश्यत्वात्स्तभऽनूरङ्लङ्जुट् परापर तत्त्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वित्तदन्योऽनादिवरायनयत्वत एवं यदीदृक्तत्सकलविद्वर्गवदेतच्चैवमेवं तदिति पत्रम् । इसका सीधे शब्दोंमें तो यह भाव है कि ये पर्वत, जमीन, सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, बिजली आदिक सभी पदार्थ जो कि किसी पुरुषके निमित्तसे नहीं हो सकते वे सब किसी बुद्धिमान एक ईश्वरके द्वारा बनाये गए हैं, कार्य होनेसे। इस अनुमानमें अति क्लिष्ट गूढ़ पदोंसे यह अर्थ कैसे निकला इसको क्रमसे सुनो, प्रथम पद है सैन्यलङ्भाक् इसका अर्थ है देह। इन मायने आत्मा है। इन कहते हैं प्रभुको, समर्थको, तो चूंकि आत्मा ही समस्त इस लोक और परलोकके व्यवहारमें समर्थ है अतएव आत्माको इन कहा गया है और जो इनके साथ रहे उसे कहते हैं सेन। सेनमें दो शब्द हैं—स और इन स का अर्थ हैं साथ। इन का अर्थ है आत्मा। जो आत्माके साथ रहे उसे सेन कहते हैं। तो सेन हुआ ज्ञान, भोग आदिक पदार्थ। अब इस ही सेन शब्दमें स्वार्थिक अर्थमें ही ष्यण् प्रत्यय लगाकर सैन्य शब्द बनाया गया है। जैसे कि कहते हैं चातुर्वर्ण्य। इसका सीधा अर्थ तो है चार वर्ण, पर उस वर्ण शब्दमें स्वार्थिकमें ष्यण् प्रत्यय करके वर्ण्य बना दिया गया है। इसी तरह सेन शब्दमें भी ष्यण् प्रत्यय लगाकर सैन्य बना दिया गया है। तो मतलब यह है कि जो सेन शब्दका अर्थ है वही अर्थ सैन्यका है अर्थात् ज्ञान भोग आदिक पदार्थ। उस सैन्यका जो लङ् है (लङ् विलासे) अर्थात् विलास है उसे कहते हैं सैन्यलङ्, अर्थात् ज्ञान भोग आदिकका विलास उसको जो भजता है, सेवता है उसे कहते हैं सैन्यलङ्भाक्। तो अब सोचिये कि ज्ञान भोग आदिक पदार्थोंके विलासको कौन भोगता है? कौन भजता है? यह देह। यौगसिद्धान्तमें यह शरीर ही तो ज्ञानको भजता है तो सैन्यलङ्भाक्का अर्थ हुआ देह।

उक्त देहधर्मीका विशेषण—यह देह कैसा है उसका विशेषण दिया गया है—नाऽनन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृत् जिसका सीधा अर्थ है प्रबोध करने वाली इन्द्रिय आदिक कारणोंका समूह रूप। याने ये इन्द्रियाँ ही एक चेत देती हैं, प्रबोध कराती हैं ऐसे इन्द्रिय कारण जिसमें भरे पड़े हुए हैं ऐसा देह। अब विशेषणमें यह अर्थ कैसे निकला? इसे भी शब्दोंका अलग-अलग अर्थ समझ करके ज्ञात करिये। इसमें अनर्थार्थका अर्थ पहिले समझिये अनर्थार्थमें तीन शब्द हैं न अर्थ, अर्थ। अर्थका अर्थ है प्रयोजन। उसके लिए जो हो उसे कहते हैं अर्थार्थ। याने प्रयोजनके लिए होने वाला। उसमें न का समास कर दिया तो बन गया अनर्थार्थ, अर्थात् प्रयोजनके लिए न होने वाला, याने जहाँ प्रयोजनका प्रयोजन समाप्त हो जाता है ऐसा जो प्रस्वाप है, प्रकृष्ट स्वाप याने लौकिक निद्रासे विलक्षण निद्रा, वह हुआ मोक्ष। जब बुद्धि आदिक गुणोंसे मुक्त हो जाता है आत्मा तो उसकी यह लौकिक निद्रासे विलक्षण निद्रारूप अवस्था हो जाती है। इस ही अवस्था विशेषको मोक्ष कहते हैं। और, यह प्रस्वाप याने मोक्ष अनर्थार्थ है, अब इस मोक्षके द्वारा साधने योग्य कुछ भी प्रयोजन न रहा। आत्माके जितने भी प्रयोजन होते हैं उन सब प्रयजनोंका अन्तमें व्यवस्थान हो जाता है उसके बाद फिर कोई प्रयोजन नही रहता। अथवा यों कहो कि जो कुछ भी उत्तम समस्त प्रयोजन है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वे सब सिद्ध हो चुके हैं। तो ऐसा अनर्थार्थ प्रस्वाप कहलाया मोक्ष । एक अलौकिक अविनाशी निद्रा ऐसी निद्रा नही है जहाँ याने जहाँ विनाशीक निद्रा है उसको करने वाला है यह देह। यहाँ किस शब्दका अर्थ कि वह विनाशीक निद्रा है अविनाशीक निद्रा नही है इसका विवरण अभी आगे किया जायगा ।

अनर्थार्थप्रस्वापके सम्बन्धमें योग और सौगतोंका वार्तालाप—इस समय इस प्रसंगमें एक शंका समाधान उपस्थित हो जाता है। जब यह कहा गया कि चर्थानर्थप्रस्वाप अर्थात् जहां प्रयोजन सब समाप्त हो जाते हैं, पूर्ण हो जाते हैं ऐसा प्रस्वाद याने मोक्ष। तो इस विशेषणको सुनकर क्षणिकवादी एक प्रश्न करते हैं कि इस तरह तो क्षणिकवादियोंकी मानी गई निद्राका भी ग्रहण हो जायगा अर्थात् क्षणिकबादियोंके समस्त निर्वाणका भी ग्रहण होगा, क्योंकि क्षणिकवादियोंका स्वाप भी अनर्थार्थ प्रस्वाप होता है अर्थात् ऐसी विलक्षण निद्रा है कि वहाँ समस्त प्रयोजन सम्पूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि सकल संतानकी निवृत्ति हो जानेका नाम मोक्ष है। ऐसा क्षणिकवादियोंने माना ही है । यहाँ इस मोक्षका मतलब परम मोक्षसे है, जीवनमोक्ष से नही। जहां परम मोक्ष होता है वहां सकल संतानकी निवृत्ति होती है। अर्थात् आत्मा–आत्मा जैसा रहनेकी संतति जहां समाप्त हो जाती है उसे मोक्ष माना है। जैसे कि क्षणिकवादियोंके ग्रन्थोंमें कहा भी है कि दीपक निर्वृत्तिको प्राप्त होता है, वह न पृथ्वीको जाता है, न आकाशको जाता है न किसी दिशामें, न किसी विदिशामें, कहीं भी नही जाता, किन्तु स्नेहका क्षय होनेसे, तेलका विनाश हो जानेसे वह दीपक शांति को ही प्राप्त होता है। उसी प्रकार यह जीव जब निर्वाणको प्राप्त होता है तो न वह पृथ्वीको जाता है, न आकाशको, न किसी दिशाको, न किसी विदिशाको, किन्तु क्लेश का क्षय होनेसे केवल शान्तिको प्राप्त होता है। तो क्षणिकवादियोंके द्वारा माने गए इस मोक्षका भी ग्रहण हो जायगा। उसके उत्तरमें एक विशेषण यह लगाया है कि वह अनर्थार्थप्रस्वापनान्तर होना चाहिए।

नाऽनन्तर विशेषणका योगाभिमत पक्षमें प्रतिपादन करते हुए देह-धर्मोके वर्णनका परिसमापन—नाऽनन्तरका अर्थ है विनाशदायक। यह अर्थ जैसे निकला ? इसमे शब्द है न न अन्तर। अन्त मायने विनाश। उसे जो राति ददाति याने पुरुषके लिये आत्माके लिये जो विनाशको देवे उसे कहते हैं अन्तर। न अन्तर: इति अनन्तर: जो पुरुषके लिये विनाशको न देवे उसे अनन्तर कहते हैं अर्थात् अवि-नाशी। और न अनन्तर: इति नाऽनन्तर: याने विनाशीक; जो विनाशदायक नहीं, ऐसा नहीं वह कहलाया नानन्तर अर्थात् विनाशीक। अनन्तरार्थप्रस्वाप अर्थात् अवि-नाशी प्रयोजन समापक अलौकिक निद्रा याने मोक्ष। अब इस पूरे पदके पहिले न निपात संज्ञक शब्द और जोड़ दिया जो कि प्रतिषेधका वाचक है। तब अर्थ यह निकला कि जो अविनाशी अलौकिक निद्रा नहीं तो क्या विनाशीक लोकनिद्रा ? यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थ निकला—नानन्तरानर्थार्थप्रस्वाप इस शब्दसे। ऐसे लोक निद्रासे जो कृन्तति छिनत्ति अर्थात् नष्ट करता है उसे कहते हैं—नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृत् जिसका अर्थ निकला कि प्रबोध करने वाले इन्द्रिय आदिक कारणोंका समूहरूप। तो इस विशेषण और विशेष्यका अर्थ निकला इन्द्रिय सहित देह। इन्द्रिय सहित देह इतने शब्दको इन शब्दों द्वारा कहा गया है इस पत्रमें नाऽनन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृत् सैन्यलङ्भाक्।

यौगाभिमत पत्रमें आसमुद्र धर्मीका वर्णन—इस पत्र प्रकरणमें योग-सिद्धान्तवादी यह कह रहे हैं कि शरीर, पर्वत, पृथ्वी, रचना, सूर्य, चन्द्रमा, जल समुद्र आदिक ये किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गये हैं, कार्य होनेसे। बात सीधो इतनी है, किन्तु इस तात्पर्यको गूढ़ पदोंमें रख करके पत्र बनाया जा रहा है। जिसमें देह और देहके बिशेषणका अर्थ कहा जा चुका है। अब कहते हैं अशैट्स्यत्को। अशैट्स्यत्का अर्थ है समुद्रपयन्त। यह अर्थ कैसे निकला? तो इसमें शब्द हैं तीन आ, शैत, स्यत्। सैट् शब्द शिशु धातुसे बना है। और शिशुका अर्थ है सेचन करना, जलसे सिंचन करना, सेचन करबा, सेक करना। तो शिशु धातुमें भाव अर्थमें घञ् प्रत्यय करनेसे शेष शब्द बना, जिसका अर्थ है शेषण करना, सिंचन करना और उस शेष शब्दमें स्वार्थिकमें अण् प्रत्यय करनेपर शैष यह शब्द बनता है। अब शैष शब्दका धातुसे पद बनाया तो उसका अर्थ हुआ शैषं करोति इति शैषी। जो सिंचन करे उसे शैषी कहते हैं। यहाँ शैष शब्दमें णिच् प्रत्यय लगाकर और टीसंतका लोप करनेपर शैषी शब्द बनता है। इसके पश्चात् तदन्ताधव: इस सूत्रसे धातु संज्ञा कर दी गई है और धातु संज्ञा होनेसे उसका आङ्से सम्बन्ध कर दिया तब शब्द बना आशैट् आशैषयति समन्तादभुव: सेकं करोति इति आशैट्। इसमें याने आशेषीमें क्विप् प्रत्यय करके उसका सर्वापहार लोप करके डत्व करनेपर आशैट् शब्द बना। आशैट्का अर्थ हुआ समुद्रपर्यन्त। जो जमीनको चारों तरफसे सिंचन करे उसे कहते हैं आशैट्। ऐसा कौन हो सकता है? समुद्र। और, आशैट् है स्यत् अर्थात् लोक प्रसिद्ध समुद्र। तत्पर्यन्तकी बात कही है तो आ उपसर्ग और लगकर अर्थ हुआ आशैट् स्यत् अर्थात् समुद्रपर्यन्त। ये सब चीजें ईश्वरके द्वारा की गई हैं ऐसा सिद्ध करनेके लिये ये धर्मी बताये जा रहे हैं। कौन कौन चीजें ईश्वरकृत हैं? देह और समुद्रान्त सारा लोक है।

यौगाभिमत पत्रमें गिरिनिकर व भुवनसन्निवेश धर्मीका निर्देश—अब और देखिये और धर्मी अनीट्क अनीट्क शब्दका अर्थ है पर्वतसमूह। अब यह अर्थ कैसे निकला? तो अनीट्क शब्दमें अ, नि, इस ये तीन मूल शब्द हैं। अ का अर्थ नही है। नि उपसर्ग है, इस् धातु है, नि पूर्वक इस धातुका अर्थ होता है गमन करना, जाना। तो नीषते गच्छति इति नीट्, अर्थात् जो चले उसे नीट् कहते हैं। और, न नीट इति अनीट्। जो चलने वाला न हो उसे अनीट् कहते हैं। अब अनीट शब्दमें स्वार्थिकमें क प्रत्यय लगा दिया है। तो शब्द बना अनीट्क। अनीट्कका अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ अचल। यह शुद्ध अर्थ हुआ। अचल कौन होता है? पर्वत्। तो अनीट्कका अर्थ है पर्वतसमूह। अथवा अनीट्कका अर्थ भुवनोंकी रचना भी है। जो तीन भुवन अथवा १४ भुवन माने हैं वे हुए अनीटक। यह अर्थ कैसे निकला? तो अनीट्का व्युत्पत्यर्थ देखिये अ मायने विष्णु उसको जो नीषति, गच्छति जावे। जो विष्णुका आश्रय लेवे उसे कहते हैं अनीट्। विष्णु मायने ईश्वर। तो यह सारा समुद्र पयन्त समस्त लोक ईश्वरका आश्रय करता है इस कारण अनीट्क शब्दका अर्थ हुआ लोक रचना।

यौगप्रस्तुत पत्रमें सूर्य चन्द्र धर्मीका संकेत—ये सब हैं अना। अनाका अर्थ है न ना यस्य इति आना। ना का अर्थ है समवायी कारण होना। जिसका समवायी कारण नहीं हैं उसे अना कहते हैं। ये सब अना है। अर्थात् इनके समवायी कारण नहीं है, तभी तो बुद्धिमत्कारणके होंगे ये सब। अथवा ईश्वरको अना कहें तो ये बुद्धिमन्निमित्तक होंगे, ईश्वरकी सत्ता अलग है और सारा विश्व जो चराचर है यह रचना अलग है तभी तो इसे ईश्वरने किया। जैसे घड़ेका रचने वाला कुम्हार अना है अर्थात् समवायी कारणरूप नहीं है। घड़ेका समवाय कारण तो मिट्टी है तो अना शब्दने यह संकेत किया कि वह ईश्वर अना है। इन सब रचनाओंका समवायी कारणभूत नहीं है निमित्त कारणरूप है। मुख्यतया अना विशेषण इनलडयुकका लगायें क्या क्या चीजें ऐसी अना हैं जो ईश्वरके द्वारा रचित हैं? इनलड्युक। इन मायने सूर्य, लड्युक मायने चन्द्रमा। सूर्य चन्द्रमा ईश्वरकृत हैं। बुद्धिमानके द्वारा रचे गए हैं। इन का अर्थ भानु है। यह तो कोषसे प्रसिद्ध ही है और लड्युकका अर्थ चन्द्रमा कैसे निकला? तो इसमें दो शब्द हैं लड् और युक्। लड्का अर्थ कान्तिसे है। लपायुक यस्य सः लड्युक। जिसका सम्बन्ध कान्तिके साथ है उसे कहते हैं लड्युक्। याने जो कान्तिमान वस्तु है उसे लड्युक् बोलते हैं। तो लड्युक् कौन हुआ? चन्द्रमा। तो सूर्य और चन्द्रमा भी बुद्धिमतनिमित्तक हैं।

यौगप्रस्तुत पत्रमें पृथिव्यादि कार्यसमूह व अनित्य गुण कर्म आदि धर्मका निर्देश—और, क्या–क्या चीजें ईश्वरकृत हैं? कुलोद्भव। कुल कहते हैं सजातीय आरम्भक अवयवोंके समूहको। जैसे लोकमें प्रसिद्ध है सजातीय बालक पैदा होते जायें तो उसे कहते हैं कुल। जो कुलकी तरह हो उसका नाम कुल है। उस कुल से अर्थात् सजातीय आरम्भक द्रव्य समूहसे जिसका उद्भव है उसे कुलोद्भव कहते हैं। ऐसा कौन है? पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्य। यौगसिद्धान्तमें दो प्रकारके परमाणु माने हैं कारणपरमाणु और कार्य परमाणु। ऐसे ही दो प्रकारके द्रव्य हैं—कारण द्रव्य और कार्यद्रव्य। कारण परमाणुसे कार्य परमाणुका उद्भव होता है, कारण द्रव्यसे कार्य द्रव्यका उद्भव होता है। तो यहाँ कुलोद्भव शब्द कहनेसे कार्यपरमाणुवोंके समूहका अर्थ हुआ। वे हैं—पृथ्वी, जल आदिक। तो यह कुलोद्भव अर्थात् पृथ्वी आदिक कार्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समूह भी बुद्धिमन्निमित्तक हैं। और, क्या-क्या ईश्वरकृत हैं ? तो कहते हैं—वैषः, वा एषः, वा मायने अथवा या तथा, एषः मायने यह प्रतीयमान याने अनित्य गुण कर्म। यहाँ वा शब्द उन-उनके ग्रहण करनेके लिए है जिनका नाम लेकर यहाँ ग्रहण नहीं किया है। उस वा शब्दसे अनित्य गुण और अनित्य कर्मका भी ग्रहण कर लेना। ईश्वरकृत क्या-क्या चीजें हैं ? इस प्रसंगमें धर्म बताये जा रहे हैं—देह समुद्रान्त, पृथ्वी, गिरि, सूर्य चन्द्रमा आदिक कार्यसमूह और वा शब्दसे यहाँ अनित्य गुण और अनित्य कर्मका ग्रहण किया है। नैयायिकसिद्धान्तमें कुछ गुण नित्य होते हैं, कुछ गुण अनित्य होते हैं और कर्म अनित्य होते हैं। तो अनित्य गुण और कर्म भी ईश्वरकृत हैं। ये गुण ये कर्म जो कि हम आप लोगोंकी प्रतीतिमें आ रहे हैं वे भी ईश्वरकृत हैं।

यौगप्रस्तुत पत्रमें समुद्र अन्धकार ताप मेघ धर्मीका निर्देश अब कहते हैं— अप्यनैश्यतापस्तन्। अप्य—अप्य नाम है समुद्र आदिकका। अद्भ्य हितः अप्यः। जो जलोंसे हितरूप हो, घिरा हुआ हो, भरा हुआ हो उसे अप्य कहते हैं। तो यह अप्य भी बुद्धिमन्निमित्तक है। और नैश्यम्—नैश्य मायने है अंधकार। निशायाः कर्म नैश्यम्—जो रात्रिका काम है उसे नैश्य कहते हैं। यह भी ईश्वरकृत है। ताप मायने उष्णता, यह भी बुद्धिमन्निमित्तक है। और, स्तन् मायने मेघ। स्तनति इति स्तन् जो फैल जाय, विस्तृत हो उसे स्तन् कहते हैं। स्तन्का अर्थ हुआ मेघ। यह सब कैसा है ? अन्टरड्लड्जुट्। अनृ कहते हैं न ना यस्य स अनो (अनृ)। नहीं है निमित्त कारण जिसका उसे कहते हैं अना (अनृ)। और, रड् का अर्थ है रहन, परिभाषण, बोलना। उसका जो लड है, विलास है, उसको जो सेवता है प्रीतिपूर्वक उसे कहते हैं अनृरड्लड्जुट्। यहाँपर भी कप् प्रत्यय नहीं किया गया है इस कारणसे निमित्त अर्थ लेना है याने जिन इन चीजोंका सामान्य पुरुष निमित्त कारण नहीं हो सकता है ऐसे ये सब सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, उष्णता, समुद्र देह, आदिक हैं, यहाँ तक धर्मीका वर्णन किया गया है।

यौगप्रस्तुत पत्रमें साध्यका प्रदर्शन—अब साध्य धर्म बतलाते हैं परापरतत्त्ववित्तदन्यः। यह सारा विश्व परापरतत्त्ववित्तदन्य है। परापरवित्तदन्यका अर्थ है ईश्वरके द्वारा किए गए हैं बुद्धिमत निमित्तक है। यह अर्थ कैसे निकला ? सो सुनिये परका अर्थ है पार्थिव आदिक परमाणु कारणभूत वस्तु और अपरका अर्थ है पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्य। याने परापर शब्दमें पर शब्दसे तो लेना कारणभूत द्रव्य और अपर शब्दसे लेना कार्यभूत द्रव्य। ऐसे परापरोंका जो तत्त्व है, स्वरूप है उसे कहते हैं परपर तत्त्ववित्, अर्थात् कार्य कारण विषयक बुद्धि वाले पुरुष। ऐसे कारण कार्यतत्त्ववेदी पुरुषसे जो अन्य कोई है उसे कहेंगे परापरतत्त्ववित्तदन्यः अर्थात् बड़े बड़े कारण कार्यका विज्ञान करने वाले पुरुषोंसे भिन्न किसी शक्तिके द्वारा, ईश्वरके द्वारा ये रचे गए हैं। तो बड़े गूढ़ पदोंमें नैयायकिसिद्धान्तमें रखे गए इस अनुमानमें यह सिद्ध किया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया गया है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, गुण, कर्म आदिक ये पदार्थ बुद्धिमत निमित्तक हैं, अर्थात् इनका कारण कोई विलक्षण अलौकिक बुद्धिमान है। और वह बुद्धिमान कौन हो सकता है ? ईश्वर। यहाँ तक एक अवयव हुआ प्रतिज्ञा। पक्ष और साध्यके कहनेको प्रतिज्ञा कहते हैं। पक्षमें तो यहाँ सारे विश्व भरकी वस्तु बता दी गई और साध्यमें बुद्धिमन्निमित्तक है यह कहा गया है। पक्ष और साध्यके संयुक्त वचनको प्रतिज्ञा कहते हैं।

योगप्रस्तुत पत्रमें साधनका जुड़ाव—अब उक्त प्रतिज्ञा किस हेतुसे सिद्ध होती है उस हेतुको कहते हैं—अन्यदिरवायनीयत्वतः यह हेतु है। इसका अर्थ यह है कि कार्य होनेसे। कार्यत्वात। यह अर्थ इतने बड़े पदसे किस तरह निकाला गया ? तो उसे व्युत्पत्तिके ढंगसे सुनो। अनादिमें दो शब्द हैं। न, आदि। आदि नाम है कारण का। जो कार्यका हेतु है उसे आदि कहते हैं। वैसे भी लोकव्यवहारमें बताया जाता कि आखिर इसका आदि क्या है। इसका कारण क्या है ? तो आदि शब्दका कारण अर्थ भी होता है और न आदि इति अनादि जो कारण न हो उसे अनादि कहते हैं। तो आदिका अर्थ है कारण और अनादिका अर्थ है कार्य। आदिका अर्थ कारण यों है कि कार्यसे पहिले ही आदि याने कारण होता है। कार्यसे पहिले जो होता है वह कारण ही तो है। उस आदिसे जो अन्य है उसे कहते हैं अनादि याने कार्यसमूह। अनादि कालका जो रव मायने शब्द है उस अनादि शब्दका जो प्रतिपादक है उसे कहते हैं अनादि रव अर्थात् कार्य शब्द। अब अनादि रवके द्वारा जो अयनीय हो उसे कहते हैं अनादि रवायनीय अर्थात् कार्य शब्दके द्वारा प्रतिपाद्य मायने कार्य है। एक कार्य तो हुआ शब्दरूप कार्य और शब्दरूप कार्यके द्वारा जो कहा गया वह है वस्तुरूप कार्य, उसका जो भाव है उसे कहते हैं अनादि रवायानीयत्व, मायने कार्यत्व और पंचमी विभक्तिके अर्थमें तव् प्रत्यय लग गया, जिसका अर्थ है कार्यत्व होनेसे। यहाँ तक इस बड़े पत्रविवरणमें प्रतिज्ञा और हेतु दो अवयव बताये गए हैं, क्या कि विश्व ईश्वरकृत है इतनी बात कही है इतनी बड़ी विकट जटिल लम्बी पंक्तियोंमें।

योगप्रस्तुत पत्रमें उदाहरणादि अवयवोंका निरूपण—अब यहाँ दो अवयव बोलनेके बाद तीसरा अवयव आता है उदाहरणका। जो कार्य है वह बुद्धिमन्निमित्तक है। जो ऐसा है वह ऐसा है यही तो अन्वयव्याप्ति होती है। जो कार्य है वह बुद्धिमन्निमित्तक है। जैसे कि सकलविद्वर्ग। सकलविद्वर्गका अर्थ है कपड़ा। सकल विद् यस्य इति सकलवित्। वृणोति आच्छादयति इति वर्गः सकलवित् च असौ वर्गः। इसका क्या अर्थ हुआ कि जो कलाओंके साथ रहे उसे कहते हैं सकला। कलाका अर्थ है अवयव भाग। जो भागोंके साथ रहे उसका नाम है सकला। कपड़ेमें भाग बहुत होते हैं। सो सकलवित् है जिसके बाने कलका ही है स्वरूप जिसका उसे कहते सकलवित् और सकलवित्को जो आच्छादित करे ऐसा जो वर्ग है समूह उसे सकलविद्वर्ग

Version 1

कहते है, याने कपड़ा । यह एक उदाहरण दिया है कि जो जो कार्य होते है वे वे बुद्धिमन्निमित्तक होते हैं। जैसे कि कपड़ा। यहां तक इसमें तीन अवयव आ गए। प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण। अब इसके बाद उपनय बोला जाय कि इसी तरह ये शरीर आदिक भी कार्य हैं, यह हो गया उपनय। इस कारण बुद्धिमन्निमित्तक है यह हो गया निगमन। इस तरह इस पत्रमें ५ अवयवोंकी सिद्धि करते हुए समस्त विश्व को ईश्वरकृत सिद्ध करना चाहा है।

यौगप्रस्तुत पत्रमें अबाधित विशेषणकी अघटितता होनेसे पत्रत्वका अभाव--यौग प्रस्तुतपत्रमें जो अनुमान दिया गया है वह समीचीन नहीं है क्योंकि यह अनुमान अनुमानाभास है। यह अनुमानाभास क्यों हैं? यों कि इस अनुमानमें दिये गए प्रतिज्ञा हेतु और उदाहरण इन सबमें कालात्यापदिष्ट आदिक अनेक दोष उपस्थित होते हैं। इस कारण यह अनुमान अनुमानाभास है। उक्त विचारमें बीच बीचमें जो जो भी विशेषण दिए गए हैं वे सब विशेषण पूर्वापर कथनसे विरुद्ध भी हैं। प्रथम तो इसमें हेतु ही विरुद्ध और अनेकान्तिक दोषसे दूषित है, स्वरूपत: वह असिद्ध भी है अतएव यह अनुमान अनुमानाभासरूप है। विचार करनेपर न तो किसी ऐसे एक बुद्धिमानकी सिद्धि होती है कि जो इस समस्त पदार्थ समूहको कार्यको अपने आप बनाता रहता हो और फिर ऐसे ईश्वरकी भी सिद्धि नही है जो अपने समता और आनन्दसे च्युत होकर इन कार्योंमें व्यग्र रहता हो। ये सब बातें प्रथम ही जब ईश्वर कर्तृत्वका निराकरण किया गया तो उस प्रकरणसे जान लेना चाहिएँ। इसका वर्णन विशेषरूपसे द्वितीय अध्यायके १२ वें सूत्रमें किया गया है।

पत्रनिसृत अर्थको वादी द्वारा मना किये जानेपर प्रतिवादीका कर्तव्य
शंकाकार कहता है कि पत्रका जो लक्षण बनाया है वह वही रहे, पर ऐसे लक्षण वाले पत्रका किसी वादीने किसी प्रतिवादीका उद्देश्य करके आलम्बन किया और रचित अवलम्बित पत्र प्रतिवादीको सौंपा और प्रतिवादीने उस पत्रको ग्रहण किया। प्रतिवादीने उस पत्रका अर्थ विचारकर पत्रको फाड़ दिया अथवा शब्दरूप वाक्य पत्र वादी ने रचा, प्रतिवादीको सुनाया और प्रतिवादी उसका अर्थ विचारकर उसमें कोई खण्डन उपस्थित करता है उसका खण्डनकर देता है। और, उस समय यदि वादी यह बोल उठे, पत्रका देने वाला यदि यह कह उठे कि मेरे पत्रका यह अर्थ नही है तब उस समय प्रतिवादीको क्या करना चाहिए? इस प्रश्नके समाधानमें कहते हैं कि उस समय प्रतिवादी विकल्प उठाकर वादीसे पूछे कि आपके पत्रका क्या अर्थ है? क्या जो आपके मनमें बस रहा है वह इस पत्रका अर्थ है या वाक्यरूप पत्रसे जो अर्थ निकलता है क्या वह आपके पत्रका अर्थ है? या आपके मनमें जो अर्थ वर्तमान हो और वही वाक्य अर्थसे प्रतीयमान हो क्या वह आपके पत्रका अर्थ है? उस समय वादीके प्रति प्रतिवादी ऐसे तीन विकल्प उठाकर पत्रके अर्थकी पूछताछ करे। उक्त विकल्पोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से यदि वादी यह कह उठे कि मेरे पत्रका तो यह अर्थ है जो मेरे मतमें मौजूद है अर्थात् उक्त तीन विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पको स्वीकार करे तो इस विकल्पका उत्तर यह है कि पत्रका सहारा लेना ही अनर्थक है। क्योंकि उस पत्रको ग्रहण करके प्रतिवादी जिसने कि उस पत्रके अर्थका स्वरूप अच्छी तरह समझ रखा है उस पत्रमें दूषण बोलता है और यह वादी उस प्रतिवादीका प्रतिपक्षी पराजित हो जाता है। इस तरह व्यवहारीजन पत्रके प्रसंगका लाभ लिया करते हैं। लेकिन जो उस वाक्यरूप पत्रसे अर्थ निकलता है उसके विषयमें तो वादी यह कहने लगा कि मेरे पत्रका यह अर्थ नहीं है तो अब जो वादीके मनमें बात बसी हुई है उस बातका न तो किसी उपायसे साधन किया जा सकता और न दूषण किया जा सकता, क्योंकि उसका कोई उपयोग ही नहीं है। जो वादीके मनमें है वही पत्रका अर्थ है, यह तो कोई तुक ही नहीं है। और, फिर न उसमें कोई दूषण बन सकता है, न साधन बन सकता है। पत्रके आलम्बनकी जरूरत ही क्या रही ? सीधा ही कहदे वह वादी कि मेरे मनमें यह है। न युक्तियाँ, न पत्र, न विचार, न रचना, न पढ़ना लिखना, किसी भी बातकी आवश्यकता नहीं है। और यह भी एक बात है कि वादीके चित्तमें प्रथम जो पत्रका अर्थ है वह किसी प्रमाणसे प्रतीत तो होता नहीं क्योंकि दूसरेके चित्तमें रहने वाले विकल्पोंका निश्चय ही क्या हो ? इसके चित्तमें अभिप्राय क्या है इसका कौन निश्चय करे ? और, फिर चित्तमें वर्तमान जो पत्रका अर्थ है वहाँ न साधन सम्भव है। जो अप्रतीयमान वस्तु है जिसका न कुछ अर्थ निकलता है, न जिसकी कोई मुद्रा बनती है, न जिसके बारेमें किसी अन्यका कोई निर्णय बनता है ऐसी अप्रतीयमान बात न साधनके योग्य होती है और न दूषणके योग्य होती है। क्योंकि इसमें अतिप्रसंग दोष है। यों फिर जो चाहे कह उठे कि मेरे मनमें जो अर्थ है बस वही अर्थ है। अब साधन और दूषण से कुछ मतलब ही न रहा।

अन्य प्रमाणसे प्रतिवादी द्वारा वादीहृदयगत पत्रार्थका जानना मानने पर भी अनर्थकताका प्रसंग--यदि प्रतिवादी अन्य किसी प्रमाणसे वादीके मनमें रहने वाले विचारके अर्थको जानकर फिर उन वादीके चित्तमें वर्तमान पत्रके अर्थके सम्बन्धमें वे साधन आदिक देवें अथवा दूषण देवें तो इस प्रक्रियासे भी पत्रका आलम्बन लेना अनर्थक है, क्योंकि अर्थ तो वह है जो वादीके चित्तमें बैठा हुआ है। और, उस अर्थकी जानकारी प्रतिवादी करता है किसी अन्य प्रमाणसे उस वादीके पत्रसे नहीं। तो जब अन्य किसी प्रमाणसे वादीके मनमें रहने वाले अर्थका वह परिज्ञान करता और उसके पश्चात् फिर उस प्रतिवादीके मनमें रहने वाले पत्रार्थका साधन अथवा दूषण करता है तो इसमें पत्रकी आवश्यकता क्या रही ? पत्रके आलम्बन की अनर्थकता रही। यदि वादी यह कहे कि हमारे दिए गए उस पत्रसे ही हमारे मन में रहने वाले पत्रके अर्थका ज्ञान होता है तो यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि एक ओर तो यह कहा जा रहा कि मेरे पत्रका यह अर्थ नहीं है, जो पत्रसे अर्थ प्रतीयमान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है उसके बारेमें अभी अभी निषेध कर दिया था कि मेरे पत्रका यह अर्थ नहीं है और अब यह कहा जा रहा है कि मेरे पत्रका अर्थ मेरे चित्तमें बसा हुआ है और वह अर्थ इस पत्रसे प्रतीयमान होता है। तो पत्रका अर्थ भी यह नहीं है और यह भी कहा जा रहा कि मेरे मनमें बसे हुए अर्थकी इस पत्रसे प्रतीति हो रही है। तो जो अर्थ है नहीं उस पत्रका और वह अर्थ उस पत्रसे प्रतीयमान कराया जा रहा तो यों तो कोई गो शब्द बोले और भैंसा घोड़ा आदिककी प्रतीति होने लगे, क्योंकि अब तो वादीने यह स्वीकार किया है कि मेरे चित्तमें रहने वाला अर्थ है। वही अर्थ है और इस पत्रका यह अर्थ नहीं है जो कि प्रतिवादी, सभास, अनेक पुरुष उससे अर्थ निकाल रहे हैं। शब्द तो शब्द ही है और उसका परिचय सभीको है और उससे जो अर्थ निकल रहा है उस अर्थको मना किया जा रहा कि यह अर्थ है ही नहीं। तो पत्रसे प्रतीयमान अर्थका निषेध करके कि इस पत्रका यह अर्थ नहीं है और मेरे मनमें रहने वाले अर्थकी प्रतीति इस पत्रसे हो रही, तो यों व्यवहारमें बिल्कुल विरुद्धता आ जायगी। किसी भी शब्दसे फिर किसी भी अर्थकी प्रतीति होने लगेगी।

पत्रसे नहीं, किन्तु संकेतसे चित्तार्थकी प्रतीयमानता माननेपर पृष्टव्य विकल्प और उसमेंसे प्रथम विकल्प माननेपर विरुद्धता—यदि वादी यह कहे कि मेरे मनमें जो वर्तमान पत्रार्थ है वह पत्रसे प्रतीयमान नहीं हो रहा है संकेत होने पर मेरे मनमें ठहरे हुए पत्रका अर्थ बन जायगा। तो इस विषयमें यह पूछा जा रहा है कि यह बतलावो कि उस संकेतको कौन करता है और किसमें किया जाता है? यदि कहो कि उस पत्रका संकेत पत्रका देने वाला करता है, पत्रका देने वाला दूसरा हो अथवा वादी ही हो, पत्रदाता वादीके चित्तमें बसे हुए अर्थका संकेत करता है तो यह बतलावो कि वह संकेत क्या पत्र देनेके समयमें किया अथवा वादकालमें किया। साथ ही यह भी बतलावो कि वह संकेत प्रतिवादीमें किया या अन्य किसी पुरुषमें किया? यदि कहो कि पत्र देनेके समयमें प्रतिवादीमें वह संकेत किया गया है तो यह बात संगत नहीं बनती। क्योंकि पत्र देनेके समयमें प्रतिवादीमें संकेत किया जाय ऐसा व्यवहार ही नहीं न ऐसा हुआ करता है कि कोई वादी पत्र देनेके समयमें ऐसा संकेत भी देता हुआ कह बैठता हो कि मेरे चित्तमें रहने वाला अर्थ यह है और इस अर्थका यह पत्र वाचक है और इस पत्रसे तुमको यह अर्थ वादके कालमें समझ लेना चाहिए। इस तरहसे तो न वाद होता है और न ऐसी कोई क्रिया करता है। भला कोई वादी प्रतिवादीसे शास्त्रार्थ कर रहा है, अपने मतव्यकी जयकी घोषणा कराना चाहता है और उस वादीने कोई वाक्य बोला, प्रतिवादीको पत्र सौंपा और पत्र देते समय, वाक्य कहते समय यह कह बैठे कि मेरे मनमें जो अर्थ है जो सिद्धान्त है, जिसकी हम जीत करना चाहेंगे वह अर्थ यह है और उस अर्थका वाचक यह पत्र है और इस पत्रसे तुम उस समय लाभ लूटना, अर्थ समझ जाना और वादके समयमें तुम इसका प्रयोग करना। इस तरहसे कोई संकेत किया करता है क्या?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वादी द्वारा संकेत दिये जानेसे ही चित्तार्थ परिचय माननेपर पत्र दानकी व्यर्थताका प्रसंग—यदि कोई इस तरहका संकेत करता है, वादी यों कह बैठता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि पत्र देनेका प्रयोजन क्या ? जब वादो पत्र देकर भी अलगसे यह कहता है कि जो पत्रसे प्रतीयमान है वह तो मेरे चित्तमें रहने वाला अर्थ नही है, मेरे चित्तमें रहने वाला अर्थ तो यह है और उसका वाचक यह पत्र है और इस पत्रसे तुम यह अर्थ समझ लेना वादके समयमें। इस तरहका कोई संकेत या परिभाषण करता है तब फिर यह बतलावो कि पत्रके देनेका अर्थ क्या रहा ? उसकी कोई आवश्यकता न रही। पत्र प्रदान करना अनर्थक रहा। केवल यह ही कह देना चाहिए कि मेरे चित्तमें अर्थ यह है और इस अर्थके सम्बन्धमें तुमको साधन अथवा दूषण कहना चाहिए। इस वक्त भी ऐसे ईर्ष्यारहित पुरुष अब भी देखे जाते और ऐसा बोलते हुए पाये जाते हैं जैस कि कहा कि शब्द नित्य है अथवा अनित्य है ऐसा हमारे माननेमें प्रतिभास हो रहा है। यदि आपके दूषण अथवा उसका साधन बोलनेमें समर्थ है तब फिर ठीक है, किसी सभ्यके समीप अपन चलें। प्रयोजन यह है कि अपने चित्तमें रहने वाली बात है वही बता दी, अब वह सिद्ध हो पाती है अथवा नहीं। यदि जिज्ञासा रख कर के उस अर्थको साधन अथवा उस अर्थका दूषण समझना चाहते हैं तब तो वह बात एक युक्त है उसके जय पराजयका सम्बन्ध बनाना चाहता हो और फिर ऐसा कहे कि मैंने जो पत्र दिया है उस पत्रका यह अर्थ नहीं है। उस पत्रका अर्थ है वह जो मेरे चित्तमें मौजूद है। और, उसमें इसका साधन अथवा दूषण कहना चाहिए। तो यह विद्वानोंकी गोष्ठीमें व्यवहारकी चीज नहीं है। और, यदि यह ही कहते हैं कि मेरे चित्तमें यह अर्थ है, इसमें दूषण दिया जायगा तो ठीक है, यह ही कह देवें, पर पत्रका देना और उसकी इतनी लम्बी चौड़ी रचना बनाना, इसका फिर कोई अर्थ न रहा, यह अनर्थक रहा।

पत्रसे नहीं, किन्तु संकेतसे चित्तार्थकी प्रतीति करानेवाले पत्रका अविस्मरणार्थ देना माननेकी असगतता—यदि यह कहा जाय अन्य समयमें, उस पत्रका अर्थ प्रतिवादी भूल न जाय, कालान्तरमें उसका स्मरण बना रहे, विस्मरण न हो जाय, इसके लिए पत्रको देना होता है। तो उत्तरमें कहते हैं कि यदि ऐसी ही दया करके पत्र दिया जा रहा है कि यह प्रतिवादी किसी अन्य कालमें इसका अर्थ भूल न जाय अतएव पत्र दिया जा रहा है याने तत्काल तो वादी मुखसे ही बताता है कि इसका अर्थ यह है और यह मेरे चित्तमें है। पत्रसे जो अर्थ निकल रहा है यह अर्थ नहीं है। मेरे चित्तमें रहने वाले इस अर्थका वाचक यह पत्र है और ऐसा पत्र वादी इस कारण दे रहा है कि प्रतिवादी अन्य कालमें इस पत्रके अर्थको भूल न जाय ! यदि दयाकी बात है तब तो उसे अगूढ़ पत्र देना चाहिए कि जिसमें अर्थ एकदम सीधा आता हो ताकि वह कभी उस पत्रके अर्थको भूल न जाय। यदि अगूढ़ पत्र नहीं दिया जाता, गूढ़ पदोंसे भरा हुआ पत्र दिया जा रहा है, तो ऐसा पत्र देनेपर भी विस्मरण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्भव हो सकता है । जो ऐसे क्लिष्ट शब्दोंसे भरा हुआ पत्र हो कि व्यवहारमें जिसका कोई उपयोग ही नहीं होता और अनेक शब्दोंको मिलाकर एक शब्दवाच्य अर्थकी प्रतीति होती हो, ऐसा गूढ़ पत्र देनेपर भी कालान्तरमें उस अर्थको भूला जा सकता है जैसे कि अभी इसी प्रकरणमें तीन पत्रोंका जिकर आया था । दो पत्र तो जैनशासनके रहस्यको बताने वाले थे और एक पत्र योगसिद्धान्तकी बातको बताने वाला था। उनमें समझा होगा कि कितने गूढ़ पद हैं और विशेषतया योगसिद्धान्तके पत्रमें कितनी क्लिष्ट रचना है ? आचार्योंका प्रयोजन यह रहता है शास्त्ररचनामें कि वस्तुस्वरूपको जानकर भव्य जीव अपना कल्याण करें । जब शास्त्ररचनाका प्रयोजन ही यह है तो पत्ररचना भी ऐसे ही स्पष्ट मधुर शब्दोंमें होनी चाहिए कि जिसका प्रयोजनीभूत अर्थ शीघ्र ही समझमें आ सके । इस पत्रविचारके समयमें चूंकि पत्रमें गूढ़ पद देना चाहिए इस धुनमें क्या करे जैन शासन सो दो पत्रोमें थोड़े गूढ़ पद दिए गए हैं, अत्यन्त क्लिष्ट गूढ़ पद फिर भी नही दिये गए, क्योंकि आचार्योंका करुणावाला अभिप्राय रहता है, लेकिन जिनकी केवल जीतहारकी ही धुन रहती है और लोग समझ न सकें तथा जिस पत्रको देखकर लोग बुद्धिमानीकी चर्चा कर बैठें, विद्याकी प्रशंसा कर बैठें, इस अभिप्रायसे जो रचना चलती है वह तो ऐसे गूढ़ पदोंकी रचना चलेगी कि लिखा हुआ पत्र भी कोई जेबमें रखले और उसे ३–४ बार समझ भी ले तो भी कुछ दिनके बाद उस पत्रका वह अर्थ स्पष्ट चित्तमें नहीं रह सकता । तो यदि पत्रका देना इस प्रयोजनके लिए हो रहा है कि प्रतिवादी कालान्तरमें उस पत्रका अर्थ भूल न जाय, स्मरण रखे तब फिर पत्र गूढ़ पदोंसे भरा हुआ न होना चाहिए और यदि अत्यन्त क्लिष्ट गूढ़ अव्यवहार्य शब्दोंसे भरा हुआ पत्र दिया जाता है तो उस पत्रके ग्रहण करनेमें भी लाभ कुछ नहीं है । कालान्तरमें उसका विस्मरण हो जायगा । अब यह बतलावो कि पत्र देनेपर भी यदि उस पत्रके अर्थका विस्मरण हो जाता है तब उस समय क्या करना चाहिए ?

वादी कहता है कि तब तो फिर उस अर्थका विस्मरण करने वालेका निग्रह करना चाहिए। अर्थात् यह हार गया है ऐसी घोषणा करनी चाहिए, उसका तिरस्कार करना चाहिए । उत्तरमें कहते हैं कि यह उत्तर संगत नहीं है । फिर तो पूर्वमें जो संकेत दिया गया है उस संकेतके विधानकी व्यर्थता हो जायगी । केवल निग्रहका ही भाव है तो निग्रह तो किसी प्रकार दोंद करके तुरन्त भी बनाया जा सकता है, फिर विद्वानों की नजरमें वह प्रक्रिया आदरके योग्य नहीं है । यदि पत्र देनेपर भी पत्रका मतलब विस्मरण हो जाय और उस समय विस्मरण करने वालेका निग्रह करना ही प्रयोजन है तब तो पहिले संकेत देना ही व्यर्थ है । वादी कहता है कि पहिले संकेत देनेकी बात व्यर्थ नहीं है । कारण यह है कि उस समय वादीने जो संकेत दिया है। वह प्रतिवादीके लिए पत्रके अर्थका परिज्ञान करानेके लिए दिया है । तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो यदि उस पत्रके अर्थका विस्मरण हो गया है तो उस पत्रके अर्थका परिज्ञान करानेके लिए फिर संकेत प्रदान कर देवे वादी, निग्रह न करे । यह किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

तत्त्वस्वरूपको समझनेकी बात चित्त में है अथवा लोगोंको बतानेकी बात चित्त में है तो पत्रका अर्थ एक बार भूल भी जाय कोई, तो भूलने वालेका निग्रह न किया जाना चाहिए किन्तु फिरसे उसका संकेत बता देना चाहिए। तो इन सब युक्तियोंसे यह सिद्ध होता है कि पत्रसे प्रतीयमान अर्थको मना करना कि यह मेरे पत्रका अर्थ नहीं है, मेरे पत्रका अर्थ तो वह है जो मेरे चित्तमें मौजूद है, यह बात नहीं बनती।

शब्दसे नही, किन्तु पत्रदाताके संकेतसे ही चित्तार्थकी प्रतीति मानने पर आपत्तियाँ—यदि कहो कि वादीके चित्तमें रहने वाला अर्थ संकेतके बलसे पत्रको ही प्रतीत होता है तो सुनिये उससे जो अर्थ प्रतीत होता है वह पत्रका अर्थ सही रहा, पर मनमें जो वर्तमान अर्थ है वह सही न रहा। संकेत देखकर भी पत्रका जो अर्थ बताया गया है वह अर्थ मेरे मनमें रहने वाला अर्थ है, यह बात प्रदर्शित की जाती है। तो भाव तो यही हुआ कि पत्रका प्रतीयमान अर्थ ही अर्थ है वास्तवमें केवल यह कहना कि मेरे मनमें रहने वाला जो अर्थ है वही अर्थ है। चाहे संकेत दिला करके उन पत्र का अर्थ निकलवाया है तो आखिर गूढ़ पदको न जान सके जल्दी, अब संकेत बतानेसे जान सके, मगर अर्थ तो वही निकला जो पत्रसे प्रतीयमान है, मनमें रहने वाला अर्थ ही अर्थ है, पत्रसे प्रतीतमान अर्थ उसके पत्रका अर्थ नहीं है, यह विकल्प तो ठीक न रहा। यदि कहो कि संकेतके सहायसे ही पत्रसे उस अर्थकी प्रतीति होनेसे पत्रसे प्रतीयमान जो अर्थ है उसमें अर्थपना न रहा तब तो फिर कुछ भी किसीका अर्थ न होगा। संकेतके बिना किसी शब्दसे फिर किसी भी अर्थकी प्रतीति न होगी, इस कारण यह पक्ष तो सही न रहा कि पत्रके देनेके समय प्रतिवादीमें संकेत किया जाता है।

वादी द्वारा वादकालमें प्रतिवादीको संकेत दिये जानेके विकल्पकी असंगतता—यदि कहो कि वादके समयमें प्रतिवादीको वादीने संकेत किया उससे प्रतिवादी पत्रका अर्थ जान जायगा, तो यह कहना भी असंगत है, क्योंकि उस प्रकार का व्यवहार ही नही होता है कि वादी वादके समयमें पत्रका अर्थ बताये याने पत्र तो पहिले ग्रहण करा दिया अथवा वह पत्ररूप वाक्य तो पहिले बताया और फिर वादके समयमें सभामें वादी प्रतिवादीको उस पत्र शब्दोंका संकेत बताये जिससे कि प्रतिवादी अर्थ समझ जाय, ऐसा तो व्यवहार होता ही नही, और मान लो ऐसा करता है वह याने सभामें वादके समयमें वादी प्रतिवादीके लिए स्वयं पत्रका अर्थ बताता है तब फिर पत्र ग्रहण करने वाले प्रतिवादीका पहिले कुछ बोलना यह तो मौकेके खिलाफ है अथवा उस प्रतिवादीको प्रथम कुछ बोलनेका मौका ही नही हो सकता है, इस कारण यह पक्ष समीचीन नही है।

वादी द्वारा अन्य पुरुषको संकेत देनेके विकल्पकी असंगतता—यदि कहा जाय कि पत्रदाता अथवा वादी अन्य पुरुषोंमें अपने पत्रका संकेत बताते हैं तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर अन्य पुरुष ही उस पत्रके अर्थका जानकार रहेगा। फिर प्रतिवादी कैसे साधन दूषण आदिक बोले। क्योंकि प्रतिवादीको तो पत्रके अर्थका कुछ परिज्ञान ही नही है। संकेत दिया है वादीने अन्य लोगोंको, इस कारण यह तीसरा विकल्प भी समीचीन नही है। यदि कहो कि प्रतिवादीको वादीके अर्थका परिज्ञान न रहे यह तो वादीको इष्ट ही है। वादीने गूढ़ पदोंसे भरा हुआ पत्र दिया, अपना मंतव्य सुनाया और प्रतिवादी उसके अर्थका ज्ञान न कर सके तो यह तो वादीको इष्ट ही है, इसमें वादी अपनी भलाई ही समझ रहा है, क्योंकि पत्रदान भी इसीलिए किया है। पहिले निबन्धको गूढ़ पदोंसे रच-रचकर पत्र तैयार किया, तो ऐसे गूढ़ पदोंसे परिपूर्ण पत्र देनेका प्रयोजन भी वादीका यही था कि प्रतिवादी इसका कुछ अर्थ ही न जान सके फिर वह बोलेगा ही क्या ? और, सभाके बीचमें उसका तिरस्कार हो जायगा यह कुछ समझता ही नही, चुपचाप खड़ा हुआ है। यदि यह बात कहते हो तब तो इससे और अच्छा यह है कि कोरा कागज ही सौंप देवे, जिसमें कुछ अक्षर ही न लिखे हों ऐसा ही पत्र दे देना चाहिए क्योंकि उससे तो फिर स्वयं ही कुछ परिज्ञान न कर सकेगा। यदि कहो कि कोरा कागज सौंप देना यह तो अशिष्टोंका काम है। जो असभ्य हैं, गुण्डा टाइपके लोग हैं, उन जैसी चेष्टाका प्रसंग फिर तो आ गया। तो उत्तरमें कहते हैं कि अशिष्ट पुरुषों की चेष्टाका प्रसंग तो इसमें ही आ गया जो वादी यह कह रहा है कि मेरे मनमें जो अर्थ है वह है अर्थ इस पत्रका इस पत्रका यह अर्थ है ही नही। भला पत्रसे, शब्दोंसे, वाक्यसे जो अर्थ निकलता है उसको मना करे और कहे कि मेरे मनमें तो यह अर्थ नही है, इसका अर्थ ही दूसरा है जो कि मेरे मनमें है तो ऐसा कहनेमें ही अशिष्टता साबित होती है।

असंगत पत्रदानसे वाद प्रयोजनकी भी सिद्धिकी अशक्यता—और भी देखिये यदि वादी पुरुषान्तरको संकेत दे और प्रतिवादीको परिज्ञान न हो सके ऐसा इष्ट माने तो जैसा पत्रका लक्षण कहा है ऐसे लक्षण वाले पत्रके देनेसे भी क्या प्रयोजन ? शंकाकार कहता है कि प्रयोजन कैसे नही है पत्र देनेका ? प्रयोजन है कि वाद-विवाद छिड़े। वादकी प्रवृत्ति करना यही वादीका प्रयोजन है पत्र देनेका अर्थात् गूढ़ पद प्राय वाक्योंके कहनेका, और ऐसा पत्र देनेपर वाद शुरु हो ही जायगा। अब रही साधन दूषण कहनेकी बात, सो यह तो वादीके मनमें जो अर्थ बसा हुआ है उसमें साधन दूषण कहनेकी बात अन्य वचनोंसे प्रतीयमान होगी। उत्तरमें कहते हैं कि यदि आपका यह अभिप्राय है और यहाँ तक आप उतर आये हैं तब तो इतना भी पत्र लिखकर क्यों कष्ट करते ? दूसरेको खूब गाली देकर पत्र दे दीजिए, उससे भी वाद छिड़ जायगा। यदि पत्रदानका प्रयोजन इतना ही समझा है कि वादकी प्रवृत्ति हो जाय तो वादप्रवृत्ति तो गाली गलौज भरे पत्रके देनेसे भी हो जायगी। फिर अत्यन्त गूढ़ पदोंसे भरे हुए पत्रकी रचनाका प्रयास करनेसे क्या लाभ ? अतः सिद्ध हुआ कि पत्रका आलम्बन प्रथम पक्षमें फलयुक्त नही बैठता, अर्थात् निष्फल है पत्रावलंबन। वादी यह कहे कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मेरे पत्रका अभिप्राय यह नही है जो वादी कहता है, क्योंकि अभिप्राय तो मेरे मनमें है और वह भिन्न है, ऐसा अपना उद्देश्य रख करके प्रतिवादीको पत्र सौंपे यह पक्ष घटित नहीं होता।

वाक्यरूप पत्रसे प्रतीयमान अर्थके विकल्पकी अभीष्टता और अन्यार्थ कल्पनाकी मीमांसा—अब यदि दूसरा पक्ष लेते हो कि पत्रके शब्दसे जो अर्थ प्रतीयमान हो वह है पत्रका अर्थ। तो उत्तरमें कहते हैं कि वाह, भला हुआ। अब तो आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई, इसकी तरह वातावरण बन गया। यह बात तो इष्ट ही है कि जो वाक्य बोला जाय और गूढ़पदप्राय पत्र हो, उसमें जो पद हैं उनसे जो अर्थ निकले वह अर्थ माना जाय, उसे सभासद भी मान लें, प्रतिवादी भी मानलें, वादी भी माने, निर्णायक भी माने। प्रकृति प्रत्यय आदिकसे जो अर्थ निकलता है उस अर्थ-विभागसे जो प्रतीयमान अर्थ है वही पत्रका अर्थ है। यह व्यवस्था बिल्कुल समीचीन है। शंकाकार कहता है कि नहीं, यह उस पत्रका अर्थ नहीं है, जो प्रतिवादी अर्थ निकालता है शब्दोंसे वह अर्थ नहीं है, किन्तु जो मैं अर्थ निकालता हूँ वह अर्थ है। देखो भैया! यहाँ एक ऐसी घटना हो गई कि किसी वाक्यके दो अर्थ भी निकल सकते हैं। अब उन अर्थोंमेंसे प्रतिवादीने अर्थ निकाला। अब प्रतिवादीके अर्थको सुन कर वादी दूसरा अर्थ पेश करके कहे कि वह अर्थ नही है, किन्तु जो मैंने बताया है वह अर्थ है। तो ऊत्तरमें कहते हैं कि वह दूसरा अर्थ ही पत्रका अर्थ बन जाय, यह कैसे सम्भव है? प्रतिवादी जो अर्थ निकालता है वह तो माना नही और पत्रका अर्थ जो वादी कहे वह पत्रका अर्थ माना जाय। मानो जिस वाक्यमें दो अर्थ निकलते हैं उनमेंसे जो सीधा स्पष्ट अर्थ निकलता है, प्रतिवादीने उस अर्थको बताया और सुनने वाले सभासद लोग भी उस अर्थको सुगमतया समझलेते हैं, उस अर्थको छोड़कर दूसरे अर्थकी पुष्टि करे वादी कि यह अर्थ नही है, किन्तु यह अर्थ है तो एक अर्थका निराकरण किया तो अन्य अर्थ कैसे सुरक्षित रह जायगा, कोई कहेगा कि यह अर्थ नही है।

अनेक अर्थ सम्भव न होनेपर भी वादीके चाहे हुए अर्थको ही पत्रार्थ माननेकी अनीति—शंकाकार कहता है कि उस पत्रका अन्य अर्थ सम्भव होनेपर भी उस पत्रका आलम्बन लेने वाले वादीने जो अर्थ चाहा है वही पत्रका अर्थ है क्योंकि पत्र भी तो वादीने ही दिया। तो उस पत्रका जो अर्थ वादी माने वही है उस पत्रका अर्थ। तो उत्तरमें पूछते हैं कि यह बात कैसे निश्चित की है? यदि कहो कि उस पत्रसे ही ऐसी प्रतीति हो रही है। वादी जो अर्थ बता रहा है और चाह रहा है वह अर्थ इस पत्रसे भी निकल रहा है। इससे हम मानते हैं कि वादीने जिस अर्थका आलम्बन लिया है वही अर्थ है। तो उत्तरमें कहते हैं कि उस ही पत्रसे तो दूसरा भी अर्थ निकल रहा जो प्रतिवादी बता रहा। इन दो अर्थोंमेंसे प्रतिवादीका, अर्थ तो माना नहीं और वादीका अर्थ मान लिया जाय यह दुषा कैसे? शंकाकार कहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि भाई पत्रसे दोनों अर्थ प्रतीयमान हो रहे हैं। जो प्रतिवादीने बताया वह भी और जो वादी कह रहा वह भी। फिर भी वादीको जो इष्ट है वही पत्रका अर्थ हो सकता है अन्य नहीं हो सकता। देखो वादीने ही तो वाक्य बोला, पत्र उपस्थित किया, तो वादी जो अर्थ कह रहा है वह उसका अर्थ है अन्य नहीं है। वादी स्पष्ट भी कह रहा कि मेरे मनमें यह अर्थ है और इस पत्रसे, वाक्यसे, शब्दसे भी यही अर्थ निकल रहा है। तो उत्तरमें पूछते हैं कि यह तो बतलाओ कि शब्द प्रमाण है या अप्रमाण ? यदि कहो कि शब्द प्रमाण है तो शब्दके द्वारा जितने अर्थ निकलें वे सभीके सभी शब्दके अर्थ मान लिया जाना चाहिए। पत्र दिया, वाक्य बोला, उसमें जो शब्द हैं उनको प्रमाण मानते हो तो फिर पत्रके शब्दसे जितने भी अर्थ निकलें वे सब पत्रके अर्थ माने जाने चाहिएँ। ऐसा कहीं नहीं देखा जाता कि कोई पुरुष आँखसे घटपटादिक अनेक पदार्थोंको तो देख रहा है और यह माना जाय कि उसे जो इष्ट हो वही पदार्थ है और दूसरा कुछ पदार्थ नही है। जब आँखोंसे दशों चीजें दिख गई और फिर भी यह कहें कि आँखसे जो यह देखा एक घड़ी या कुछ जो उसे इष्ट है वही पदार्थ है और सब झूठ है, यह कैसे माना जा सकता है। आँखसे जितना ज्ञात हुआ है वह सब अर्थ है, शब्दसे जितना ज्ञात हुआ है वह सब अर्थ है। इस कारण यह कहना अयुक्त है कि पत्रसे अर्थ अनुकूल भी निकला लेकिन वादीको जो इष्ट है, जिसने पत्र पेश किया है उसका इष्ट ही अर्थ अर्थ कहलायेगा, दूसरा नहीं, यह बात संगत नही है। यदि कहो कि शब्द अप्रमाण है, प्रतिवादीने जो अर्थ निकाला है शब्दका वह यों ठीक नहीं है कि शब्द अप्रमाण है तो उत्तरमें कहते हैं कि शब्द अप्रमाण है तब तो सभी शब्द अप्रमाण हुए। वादी अपना अर्थ जिन शब्दोंमें बता रहा है वे भी शब्द अप्रमाण हैं फिर वादीके द्वारा इष्ट अर्थ भी तो पत्रका अर्थ नही माना जा सकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि जिसको दो चन्द्र आँखोंसे दिखते हों और चन्द्र के देखनेके बाद वह स्वयं यह कहे कि इस तरफका चन्द्र तो असली है और इस तरफ का चन्द्र नकली है। तो इसी तरह जब शब्दसे दो अर्थ निकलते हैं उन अर्थोंमेंसे कोई यह कहे कि वादी जिस अर्थको कह दे, वह तो अर्थ माना जायगा और दूसरा न माना जायगा। यह बात कैसे हो सकती है ? अगर होती है तो प्रतिवादीने पत्र ग्रहण किया, सो उसमें उस प्रतिवादीको जो इष्ट अर्थ हो वह अर्थ क्यों न मान लिया जाय। इस कारण यह पक्ष भी युक्त नही है कि वादी जो कह दे सो सही मान लिया जाय।

पत्रार्थ सम्बन्धित तृतीयपक्षमें प्रष्टव्य विकल्प — शंकाकार कहता है कि पत्रसे जो अर्थ प्रतीयमान हो और पत्रदाताके चित्तमें जो अर्थ हो वही अर्थ है। अर्थात् दोनों बातें सामने आ जायें कि शब्दसे भी वही अर्थ निकलता है और वादी भी उस अर्थको मान ले वह है पत्रका अर्थ हम यह तृतीय पक्ष मानेंगे। यहाँ यह बात उपस्थित की जा रही है कि पत्रसे अर्थ तो निकले दो और उनमेंसे वादीने इष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक अर्थको अपना स्वीकार किया कि यह है मेरे वाक्यका अर्थ तो पत्रसे भी अर्थ निकले और वादीके चित्तमें भी जो अर्थ हो अर्थ तो वह कहलायेगा । तो इसके उत्तरमें यह पूछा जा रहा है कि यह किसके द्वारा जाना गया कि वादीके चित्तमें यह अर्थ है यह किसने जाना ? वादीने जाना या प्रतिवादीने ? या जो प्रश्नपर विचार करनेके लिए बैठे हैं ऐसे जो निर्णायक हैं क्या उन्होंने जाना ?

पत्रदाता द्वारा विज्ञात स्वयंके चित्तके अर्थसे पत्रार्थता माननेकी असङ्गतता—उक्त तीन विकल्पोंमेंसे यदि प्रथम विकल्प लेते हो कि पत्रदाताके पत्रमें जो अर्थ है उसे वादीने जाना, तो सुनिये ! प्रतिवादीने वादीके मनमें जो अर्थ है उसके अनुकूल भी अर्थ लगा दिया, पत्रका व्याख्यान कर दिया और वादीने भी उसी अर्थको अपने मनमें मान लिया कि हाँ, अर्थ तो ठीक लगा दिया और इतनेपर भी वह वादी यदि धृष्टतासे यह बोल उठे कि मेरे पत्रका तो यह अर्थ नहीं है याने वादीके चित्तमें जो अर्थ पड़ा हुआ है वही अर्थ प्रतिवादी भी लगाकर बोल देता है और इतनेपर भी वादी झूठ कह जाय कि उसका यह अर्थ नहीं है, मेरे चित्तमें तो अन्य ही अर्थ बसा हुआ है तुमने तो इसके विपरीत अर्थ जान लिया इसलिए तुम निगृहीत हो, अजानकार हो, इस तरहसे तिरस्कार भरी बात बोलदे, उसका निग्रह करे तो उस समय प्राश्निकोंको क्या करना चाहिये सो तो बताओ ? जो इस सभामें निर्णायक लोग बैठे हैं उनका इस घटनाके होनेपर क्या कर्तव्य है सो तो बताओ ? यदि कहो कि जैसा वादी कह रहा है वैसा ही मान लेना चाहिए । तो कहते हैं कि वाह रे वाह, वे बड़े महामध्यस्थ हो गए निर्णायक लोग कि जो सच्चे अर्थका प्रतिपादन करने वाले भी प्रतिवादीके निग्रहकी व्यवस्था बनाता है । पत्रसे जो अर्थ निकलता है वही अर्थ वादीके मनमें था, वह भी बता दिया फिर भी वादी झूठ कहदे कि मेरे वाक्यका यह अर्थ नहीं है और तुम इस अर्थको पकड़ ही न सके तो तुम निग्रहके योग्य हो और वादीके कहनेपर जिसको निर्णायक मान रखा था वादी प्रतिवादी दोनोंने जिसे निर्णायक पदपर बिठाया वह वादीकी हाँमें हाँ कर बैठे और प्रतिवादीके निग्रहकी व्यवस्था करदे वादीके कहने मात्रसे, तो यह कोई मध्यस्थताका बात हुई ? यह तो उनका अन्याय है । यहाँ शंकाकार कहता है कि वादीके कहनेमात्रसे प्रतिवादीका निग्रह नहीं किया जा रहा, किन्तु जब वादी अपने मनमें आये हुए अर्थान्तरका निवेदन कर रहा है कि मेरा अर्थ यह है, अपने अर्थको न छिपाकर जब वह बता रहा है तो उससे निग्रह किया जा रहा है । तो इसके उत्तरमें पूछते हैं कि यह तो बतलावो कि वादीके द्वारा निवेदन किया गया जो अन्य अर्थ है वह पत्रका अभिधेय है, पत्रका अर्थ है यह बात कैसे जानी जाय ? यदि कहो कि पत्रके शब्दोंके अनुकूल जो पत्र शब्दसे प्रतिकूल न हो, इस प्रकारसे वादी ने निवेदन किया इससे जाना जायगा कि वादीके द्वारा कहा गया अन्य अर्थ इस पत्रका अभिधेय है । तो उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर इसी बुनियादपर प्रतिवादीके द्वारा कहा गया अर्थ भी पत्रका अभिधेय मान लेना चाहिए क्योंकि शब्दके अनुकूल वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिवादी भी अर्थ लगा रहा है । जिन शब्दोंमें दो अर्थ बसे हैं ऐसा पत्र वादीने उपस्थित कर दिया, अब उसमें प्रतिवादी जो अर्थ निकाल रहा है उस अर्थको झुटलाकर वादी अन्य अर्थका ही समर्थन करे तो उसपर प्राश्निक लोग यह निर्णय कैसे कर जायें कि जो वादीने कहा वह अर्थ ठीक है ? प्रतिवादीने जो समझाया है वह अर्थ भी तो उस पत्रसे निकलता है, उसे मान लीजिये ।

वादीके बताये जाने मात्रसे पत्रार्थत्वकी व्यवस्था बनानेकी असंगतता

शंकाकार कहता है कि जो प्रतिवादी अर्थ बता रहा है वह वादीके चित्तमें नही है । वादीके चित्तमें उस अर्थके स्फुरित न होनेसे प्रतिवादीका बताया गया अर्थ पत्रका अर्थ न माना जायगा । तब तो उत्तरमें पूछते हैं कि यह भी कैसे जाना जाय कि यह अर्थ वादीके चित्तमें स्फुरित नहीं हुआ है ? यदि कहो कि वादीके चित्तमें इस ही अर्थका दर्शन हुआ है इस कारण उसकी बात मान ली जायगी तो यह तो बताओ कि वहाँ जो प्राश्निक लोग हैं, निर्णायक लोग हैं उनको क्या वादीका हृदय प्रत्यक्षभूत हो गया जिससे वे निर्णायक यह मानलें कि वादीका चित्त हमने खूब देख लिया और यही अर्थ वादीके चित्तमें पड़ा हुआ है । यदि ऐसी बात हुई है तो हम यह समझेंगे कि ये सर्वज्ञ लोग बैठे हुए हैं वादविवादका निर्णय करनेके लिए । यह यहाँके पंडित मनुष्य नहीं हैं । याने फिर तो प्राश्निक लोगोंको सर्वज्ञ ही होना चाहिए और वे ही जान सकेंगे कि वादीके चित्तमें यह बात समाई हुई है और तभी वे निर्णायक निर्णय देंगे । और, ऐसा अगर मान लेते हो कि सर्वज्ञ ही प्राश्निक हो सकेंगे और वे ही वादीके चित्तका प्रत्यक्ष करेंगे और बतावेंगे कि वादीके मनमें यह अर्थ है तब तो प्रत्यक्षसे ही वादी और प्रतिवादीके अर्थकी सारता और असारता जान ली, फिर कुछ बताये बिना ही और सभा बनाये बिना ही सम्बन्ध लगाये बिना ही एकदम जय पराजयकी व्यवस्था बना देवे । जब निर्णायक सर्वज्ञ बैठा है तब फिर तुरन्त ही वह क्यों न कह दे कि इसमें इसकी जय है इसकी पराजय है । फिर वहाँ जुड़ाव, रचना, विचार, युक्ति इसकी क्या आवश्यकता है ? और यदि कहो कि वे प्राश्निक लोग सर्वज्ञ नही हैं तो फिर वे यह कैसे जान सकेंगे कि वादीके चित्तमें इस अर्थका तो स्फुरण हुआ और इसका स्फुरण नहीं हुआ है । यह अर्थ तो विराजमान है और यह नही इसका कैसे निश्चय करेंगे ? जैसे जिसने जमीनको ही नही देखा वह यह कैसे कह सकेगा कि इस जमीनपर घड़ा है अथवा नहीं है ? जिसने कमरा ही नही देखा वह यह कैसे कह सकेगा कि इस कमरेमें घडा है अथवा इस कमरेमें घड़ा नही है ? इसी तरह जब निर्णायक असर्वज्ञ है और वह वादीके चित्तका साक्षात्कार नही कर सकता है तो वह कैसे निर्णय कर देगा कि वादीके चित्तमें यह अर्थ बैठा है ? निर्णायक भी तो शब्दोंको निरख निरखकर निर्णयकी बात कह सकता है । यदि कहो कि यह वादी स्वयं ही तो अपना अर्थ कह रहा हैं कि मेरा वह अर्थ मनमें है । यह अर्थ मनमें नही है । उस वादीकी बात सुनकर वे निर्णायक लोग भी निर्णय दे सकते हैं कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिवादीने जो अर्थ बताया है वह वादीके चित्तमें नही है। और जो वादीने कहा वह स्फुरित है। तो इसपर यह सदेह हो जायगा कि प्रतिवादीने जो अर्थ निश्चित किया वह इसके मनमें है या जो यह शब्द बोल रहा है कि यह मेरा अर्थ नही है, किन्तु मनमें अन्य अर्थ ही विद्यमान है जिसे मैं जानता हूं, क्या यह अन्य अर्थ है? यह निश्चय नही हो सकता, उसमे भी सन्देह हो जायगा इसलिए वादीके कहने मात्रसे यह अर्थ मान लेना चाहिए।

बादीके कहने मात्रसे पत्रार्थको निश्चय करनेकी असमीचीनता – वादी के कहने मात्रसे पत्रके अर्थका निश्चय बनाना एक धोखा भी हो सकता है, क्योंकि देखे जाते हैं ऐसे अनेक वादी कि ऐसा पत्र रचते हैं जिसमें कि अनेक अर्थ गर्भित हो जायें और वे पहिलेसे ही यह निर्णय बना लेते हैं कि यदि प्रतिवादी इस पत्रका यह अर्थ जानेगा कहेगा तो हम इस प्रकार दूसरा अर्थ बोलेंगे वह कहेंगे कि यह इस पत्र का अर्थ नही है, किन्तु यह है। यदि प्रतिवादी इस अर्थको जानेगा तब हम अन्य प्रकार कहेंगे। इस प्रकारका पहिलेसे मनमें निर्णय कर लेने वाले वादी देखे जाते हैं इस कारण वादीके कथन मात्रसे पत्रके अर्थका निश्चय बनाना यह तो नीति नही है। शंकाकार कहता है कि वह वादी गुरु आदिकसे पहिले निवेदन करता है और उसके बाद फिर प्राश्निक पुरुषोंको गुरु आदिकों द्वारा भी उनका निश्चय होता है कि पत्रका यह अर्थ है, याने वह वादी पहिले गुरुजनोंको बता आया और उसके बादमें वही अर्थ बोलता है और उससे फिर प्राश्निक लोग निश्चय कर लेते हैं उन गुरुवोंसे भी पूछ करके कि क्या यही अर्थ इस वादीने आपको बताया है और उन गुरु आदिकसे फिर वे निर्णायक लोग उस अर्थका निश्चय करते हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात संगत नही है, क्योंकि इस घटनामें भी अर्थात् उन्होंने गुरुसे कुछ निवेदन किया हो और प्राश्निक लोग फिर उन गुरुवोंसे वादीके कहे हुए अर्थका निश्चय कर लें, इसमें भी आशका दूर नही होती है, क्योंकि अपने शिष्यके पक्षपातसे उन गुरुजनोंमें अन्य प्रकार बोलनेकी भी बात सम्भव हो सकती है। वे गुरुजन कहीं वीतराग ऋषिसंत तो नही हैं। जैसे ये हैं वैसे ही उनके गुरु भी हो सकते हैं। तो गुरु भी पक्षपातसे अन्यथा बोल दे कि ठीक है। जो वादी कह रहा है यही अर्थ मुझे बताया है जो गुरुजनोंसे वादीने निवेदन किया और प्राश्निक लोग उन गुरुवोंसे पूछकर निश्चय करदे यह बात भी युक्ति संगत नही है।

किसी भी ढंग मात्रसे वादीके अभ्युपगममात्रसे वादीदर्शित पत्रार्थकी मान्यताकी अयुक्तता – शंकाकार कहता है कि यदि वादी वादकी प्रवृत्ति पहिले ही निर्णायक लोगोंसे यह कह दे कि देखिये मेरे पत्रका यह अर्थ है, इसमें यदि प्रतिवादी अन्य अर्थको बोल दे तो आपको निवारण करना चाहिए और उसका निग्रह आदिक करना चाहिये। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस प्रसंगमें तो फिर वे बड़े घुली मिली मस्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के महामध्यस्थ बन गए देखो जिन निर्णायकोंने पहिले तो पत्रका अर्थ जाना नही और जो वादी और प्रतिवादी दोनोंकी सम्मतिसे जो चुने गए और वहाँ वादी मौका पा कर निर्णायकोंको कुछ समझा दे, पटा ले, और वहींपर अकस्मात् ही कुछ सभ्यजनों को बुला लिया तो यह तो सब एक नाटकका रूप हो गया। पहिलेसे ही कही बदी बात बन गयी, फिर सभ्योंके बीचमें और उन प्राश्निकोंके बीचमें विवाद करनेमें क्या लाभ रहा? वह तो कोई निर्णयका साधन भी न रहा। यदि कहो कि भले ही वादी ने प्राश्निकोंको प्रतिपादन कर दिया मगर वह अर्थ तो पत्रसे भी प्रतीत हो रहा। सो जो अर्थ पत्रसे प्रतीत हो रहा वह ही वे बतला रहे हैं। इसमें क्या दोष आया? तब फिर यह पूछा जा सकता है कि वादी प्रतिवादीमेंसे एक वादी ही निर्णायक लोगोंसे प्राश्निक लोगोंसे पहिले उसवादके सम्बन्धमें क्यों सम्मतिके ढंगसे बात करता है? और प्राश्निक व निर्णायक लोग भी क्यों वादीकी बातचीतमें शामिल होते हैं। यदि कहो कि सभ्य लोगोंने तो वादीसे कुछ नही सुना पत्रका जो अर्थ ध्वनित होता है वह अर्थ तो सभ्योंकी दृष्टिमें है। तो उत्तरमें कहते हैं कि जैसे सभासदोंकी दृष्टिमें वह अर्थ आया जो पत्रसे प्रतीत हुआ और सभ्य लोग उस अर्थको मानते हैं तब तो प्राश्निकोंसे भी पहिले वादीसे सम्बन्ध न बनाकर पत्रसे अर्थ जानकर वही अर्थ मानना चाहिए, क्योंकि पत्रसे अर्थ जैसे सभ्य लोगोंको प्रतीत हो जाता है उस ही प्रकार वही अर्थ प्राश्निकोंको भी प्रतीत हो जाता है। इससे यह पक्ष तो युक्त रहा नही कि पत्रदाताके चित्तमें जो अर्थ है वही पत्रका अर्थ है, और उसे वादीने जान रखा है। वादीके जान रखेका क्या विश्वास? अब यदि दूसरे पक्षकी बात कहोगे कि वादीके मनमें ठहरे हुए अर्थका प्रतिवादीने ज्ञान कर लिया तो यह बात यों असंगत है कि प्रतिवादी वादीके मनको जानता तो नही है जिससे कि प्रतिवादी यह जान सके कि जो इस वादीके मनमें अर्थ बसा हुआ है वह ही अर्थ मेरे द्वारा निश्चित किया गया है। इससे यह दूसरा पक्ष भी असंगत है कि प्रतिवादी जान लेता है वादीके मनमें रहने वाले अर्थको। इसी तरह तीसरा पक्ष भी विचारणीय है, अर्थात् वह मानना कि जो अर्थ पत्रसे प्रतीत होता है वह दाताके चित्तमें जो बसा है वही है और इस बातको प्राश्निक लोगोंने जान लिया है, यह तीसरा पक्ष भी सही नही बैठता। क्योंकि प्राश्निक लोगों व सभ्य लोगों को भी इस बातके निश्चयका कोई उपाय नही है कि वे निश्चय कर सकें कि वाद मनमें पत्रका वही अर्थ बसा हुआ है।

पत्रदाताके पत्रकी परीक्षाकी अन्तिम मीमांसा—और भी सुनिये! अब यह, बतलावो कि पत्रदाताकका वह पत्र किस वचनरूप है? क्या पत्रदाता के स्वपक्षके साधनको कहने वाला वचन है अथवा परपक्षके दूषणको बताने वाला वचन है या स्वपक्षका साधन और परपक्षका दूषण इन दोनोंको बताने वाला वचन है? अथवा वह पत्र अनुभय वचनरूप है? इन चार विकल्पोंमेंसे यदि आदिके तीन विकल्प कहते हो तो देखिये उस वादीको सभासदोंके आगे तीन बार उसका उच्चारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

करना चाहिए। जो गूढ़पदप्राय पत्र उपस्थित किया है, जिसमें कि पत्रदाताने अपने पक्षके साधनकी बात कही और पक्षके दूषणकी बात कही है एवं स्वपक्ष, साधन, परपक्ष दूषण दोनों ही बात कही है ऐसा ही पत्र वादीको तीन बार उच्चारण करके बताना चाहिए, क्योंकि उस पत्रमें भी तो विषमता है। कठिन पद हैं। गूढ़ पद हैं। और फिर यह बतलावो कि तीन बार उच्चारण करनेपर भी जब प्राश्निक लोगोंने प्रतिवादीने उसका अर्थ नही जाना, जैसा कि वादीका अभिप्राय है उस अर्थके अनुकूल नही जाना तो पत्रदाताका क्या होगा ? शंकाकार उत्तरमें कहता है कि निग्रह होगा, क्योंकि अज्ञात नामका निग्रह स्थान ऐसा ही है कि तीन बार कहा जानेपर भी कष्ट प्रयोगसे शीघ्र उच्चारणसे आदिक कारणोंसे परिषदके लोग यदि उस अर्थको न जानें तो वह अज्ञात नामका निग्रह स्थान है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तो ऐसी हुई जैसे कि कोई पुरुष अपने वधके लिए राक्षसीको जगाये। देखो इसमें वादीका या प्रतिवादीका निग्रह किया इतनी ही बात नही किन्तु इस विधिसे तो परिषदके लोग प्राश्निक लोग सभीको ही अज्ञान सम्भव है। उस पत्रका अर्थ न जानें तो अज्ञान नामका निग्रह फिर सभीको लग जाना चाहिए और फिर तत्त्वविचारकी बात ही क्या रही ? स्वपक्षसाधन और परपक्षदूषण करने वाले पत्रके प्रयोगसे ही तो स्वपक्ष साधन परपक्षदूषण मान लिया जाता है, तो अर्थ समझनेकी तो कोई बात ही न रही, इतने मात्र प्रयोगसे स्वपक्षसाधन परपक्षदूषण मान लिया जानेपर फिर तो प्रतिवादीके किसी भी कथनकी अपेक्षा न करके ही सभ्य लोग प्राश्निक लोग वादी और प्रतिवादीकी जय और पराजयको व्यवस्था कर डालें। इस कारण ये तीन विकल्प तो युक्त रहे नही कि पत्र जो है वह पत्रदाताके स्वपक्ष साधन वचनरूप है या परपक्ष दूषण वचनरूप है या स्वपक्षसाधन, परपक्षदूषण दोनों ही वचनरूप है ? अब यदि चतुर्थ पक्ष मानते हो कि वह पत्र तो अनुभय वचनरूप है, न उसमें स्वपक्ष साधनकी बात है और न परपक्ष साधनकी बात है तो उत्तरमें कहते हैं कि इससे तो वादीका निग्रह प्रसिद्ध ही हो गया, क्योंकि वादीने उस पत्रमें न तो अपने पक्षके साधनकी बात कही है और न परपक्षके दूषणकी बात कही है। इस कारण अनुभय वचन वाले पत्रको देने वाले वादीका निग्रह तो स्वयं ही सिद्ध हो गया।

पत्रमीमांसाका उपसंहार— इस पत्र परीक्षामें विशेष बात कहनेसे क्या ? सीधी बात यह मान लेनी चाहिए कि वचन यद्यपि गूढ़ भी हों तो भी इतने तो स्पष्ट हों कि जिनमें प्राश्निक लोग उसका अर्थ लगा सकें और उसमें साधन दूषण दे सकें। अन्य प्रकारके छल करके कई अर्थ विचारकर यह पहिले निर्धारण करलें कि प्रतिवादी यों कहेगा तो मैं यों बोलूँगा, उसे अन्यथा कर दूंगा। न सब अभिप्रायोंसे कोई हितकी सिद्धि नही है। जितना भी तत्त्वनिर्णय है उसका प्रयोजन यह है कि वास्तविक तत्त्वकी श्रद्धा करके और उसके अनुसार उपयोग बनाकर संसारके संकट मेट लिए जायें। वाद-विवादमें, जय-पराजयकी धुनमें केवल लौकिक उद्देश्य बनानेमें तो तत्त्व-

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्णय सम्भव नही है। पत्रपरीक्षाके सम्बन्धमें उद्देश्य, व्यवहार्यत्व, परिणाम हितपरक होना चाहिए, अन्य कुछ कहना व्यर्थ है।

अब इस परीक्षामुख ग्रन्थके अन्तमें परीक्षामुखसूत्रके रचयिता माणिक्यनन्दी आचार्य अपनी की हुई रचनाकी समाप्ति तथा अभिमानके परिहारको सूचित करते हुए कहते हैं—

परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः ।
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ॥१॥

ग्रन्थकार द्वारा ग्रन्थसमापनकी औद्धत्यपरिहारगर्भित सूचना व ग्रन्थकी परीक्षामुखरूपता तथा आदर्शरूपता—हेय उपादेय तत्त्वके ज्ञानके लिए आदर्शरूप इस परीक्षामुखसूत्रकी मुझ जैसे बालने परीक्षादक्ष पुरुषोंकी तरह रचना की है। परीक्षामुखका अर्थ क्या है? परीक्षा नाम है तर्कका। परीक्षा शब्दमें दो शब्द पड़े हैं परि और इच्छा, परि उपसर्ग है जिसका अर्थ है कि सर्व ओरसे समस्त विशेषोंसे ईक्षाका अर्थ ईक्षण है, निरीक्षण करना। सर्व ओरसे समस्त विशेषताओंके साथ जहाँ पर अर्थका निरीक्षण किया जाता है उसे परीक्षा कहते हैं। और, उस परीक्षाका यह ग्रन्थ मुखरूप है। मुख होता है प्रवेशद्वार जैसे कि प्रवेश चाहने वाले पुरुषोंको जो कि ग्रन्थमें दर्शनशास्त्रमें, तत्त्वकी व्युत्पत्तिमें प्रवेश चाहते हैं उन पुरुषोंके लिए यह शास्त्र प्रवेशद्वार है। ऐसे तत्त्व व्युत्पत्तिमें प्रवेश चाहने वालोंके लिए प्रवेशद्वार स्वरूप इस परीक्षामुख ग्रन्थको मैंने किया यह परीक्षामुखसूत्र आदर्श रूप है। आदर्शके धर्मका सद्भाव होनेसे यह सूत्र भी आदर्श है। आदर्श नाम दर्पणका है। जैसे कि आदर्श शरीरके अलंकार चाहने वाले पुरुषोंको स्पष्ट दिखा देता है उनके मुखपर जो शोभा है, आभूषण हैं उनको आदर्श स्पष्ट दिखा देता है। और, यों दिखा देता है कि उसमें यदि कुछ विरूपक है, कुछ अनिष्ट है तो उसे वह छोड़ दे और उसमें यदि सुरूपक है तो उसे वह ग्रहण करे। इस रूपसे वह आदर्श स्पष्टतया शरीर शोभा चाहने वाले पुरुषोंको दिखा देता है और लोग करते भी हैं यही। इसी उद्देश्यसे दर्पणमें अपना मुख देखते हैं कि यदि कुछ कमी रह गयी हो कहीं कुछ विरूपकपना आ गया हो तो उसे दूर करदें और सही शोभाके रूपसे अपने मुखको सजालें इसी भावसे दर्पणको देखा करते हैं। तो यह परीक्षामुखसूत्र उस दर्पणकी तरह ही आदर्श है कि इसके द्वारा तत्त्व निर्णय करके जो हेय तत्त्व है उसे छोड़दे और जो उपादेय तत्त्व है उसे ग्रहण करले।

ग्रन्थरचनाकी प्रयोजकता—यहाँ कोई यह सोचे कि ऐसा शास्त्र किस लिए बनाया है आचार्यने? तो उसका उत्तर मिलता है सम्विदे शब्दसे अर्थात् सम्यग्ज्ञानके लिए इस शास्त्रकी रचना आचार्यने की है। किनके ज्ञानके लिए? उसका उत्तर दिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है कि जो मुझ सरीखे बाल हैं, अज्ञ हैं उनके ज्ञानके लिए यह शास्त्र रचा है। इसमें आचार्यने अपनी उद्धतताका परिहार किया है। जो पुरुष मेरे समान अल्प प्रज्ञा वाले हैं उनको हेय उपादेय तत्त्वके सम्यग्ज्ञान करानेके लिए यह शास्त्र रचा गया है। किस तरह ? परीक्षादक्षोंकी तरह। जैसे कि परीक्षादक्ष पुरुष महापुरुष धुरन्धर आचार्य अपने ही समान शिष्योंको व्युत्पन्न करनेके लिए उनके सम्यग्ज्ञानको रचते और वृद्धि करनेके लिए विशिष्ट शास्त्र रचते हैं तो उसी प्रकार मैंने भी इस ग्रन्थको बनाया है।

अनल्पप्रज्ञ होनेपर भी ग्रन्थकर्ताका औद्धत्य परिहारपरक वचन—यहाँ शंकाकार कहता है कि यह बात तो कुछ विरुद्ध जैसी जच रही है। जो अल्पप्रज्ञ हों, जिनकी बुद्धि अल्प है वे परीक्षादक्ष आचार्योंकी तरह ऐसे ग्रन्थोंको कैसे बना सकते हैं। और, आरम्भ किए हुए ऐसे विशिष्ट शास्त्रको कैसे समाप्त कर सकते हैं ? इस श्लोक में कहा यह गया है कि मुझ सरीखे जो अल्पबुद्धि वाले लोग हैं उनके ज्ञानके लिए परीक्षादक्ष चतुर ऊँचे आचार्योंकी तरह यह ग्रन्थ बनाया है। तो इसमें विरोध जच रहा कि अल्पप्रज्ञ वाले परीक्षादक्षकी तरह ग्रन्थ कैसे बना सकते हैं ? अथवा ग्रन्थ बनाना प्रारम्भ करें तो उसका निर्वहण याने विधिपूर्वक समाप्ति तक निभाना कैसे कर सकते हैं ? और, यदि ऐसे परीक्षादक्ष महान आचार्योंकी तरह ग्रन्थ बनायें अथवा प्रारम्भ किए हुए ऐसे विशिष्ट ग्रन्थोंको समाप्त कर सकें तो फिर उनको अल्पबुद्धि कैसे कहा जा सकता है ? इसमें तो परस्पर विरोधकी बात आती है। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात शंकामें न रखनी चाहिए। क्योंकि ग्रन्थकारने तो अपनी उद्धतताका परिहारमात्र ही दिखाया है। वे आचार्य समर्थ थे। माणिक्यनन्दी आचार्य जिन्होंने परीक्षामुखसूत्र ग्रंथ रचा है, वे अल्प बुद्धि वाले न थे। और, परीक्षादक्षोंकी तरह इस न्यायसूत्र की अमर कृतिकी व्याख्या करनेमें अपने मुखसे ऐसी ही बात कह सकते हैं जिसमें उद्धतताका परिहार हो। तो यहाँ ग्रन्थकारने इन शब्दोंको कहकर अपनी अहंकारताका परिहार किया है ? उनमें विशेष बुद्धि थी, यह बात तो उनके विशिष्ट शास्त्ररूप कार्यकी उपलब्धिसे ही निश्चित हो जाती है। ऐसे संयुक्तिक दार्शनिक ग्रन्थ जैसी कुञ्जीको बहुत अबाधित रूपसे बनाया है, इतना महान ग्रन्थ आज यह उपलब्ध है। इससे ही यह सिद्ध होता है कि आचार्य महाराजको इस विषयका बहुत बड़ा ज्ञान था इसलिये यह शंका नहीं की जा सकती कि इस सूत्रके रचयिता अल्पबुद्धि वाले थे। यह विशिष्ट ग्रंथ उनकी अद्भुत बुद्धिका परिचय करा रहा है। विशिष्ट कार्य किसी साधारण कारणसे सम्भव नहीं हो सकता, ऐसा सम्यग्ज्ञान परिपूर्ण ग्रन्थ अल्प बुद्धि वाले आचार्यसे सम्भव नहीं हो सकता।

ग्रन्थकर्ता व ग्रन्थावधारयिताके अनल्पप्रज्ञत्वके प्रकाशकी शब्दोंमें ध्वनि—अथवा इस ही श्लोकमें मादृशो बाल: इस शब्दके बीच एक अण्डाकार बाण लिया जाय तो शब्दार्थ यह निकलेगा कि मादृश: अबाल: अर्थात् जो मुझ सदृश अबाल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हूँ, महान प्रज्ञाके धनी हैं उन पुरुषोंके हेय उपादेय तत्त्वका ज्ञान करनेके लिए मैंने इस शास्त्रको रचा है, जैसे कि परिक्षादक्ष महान आचार्य हेय उपादेय तत्त्वके ज्ञानके लिए ग्रन्थ रचते हैं। परीक्षादक्ष पुरुष जैसे परिक्षादक्ष लोगोंके लिए विशिष्ट शास्त्रोंको रचते हैं इसी प्रकार अनल्प बुद्धि वाले मैंने अनल्प बुद्धि वाले लोगोंके हेय उपादेय तत्त्वज्ञान के लिए इस ग्रन्थ को रचा है। अब शंकाकार कहता है कि यह ग्रन्थ यदि बहुत बड़े बुद्धिवाले विद्वान पुरुषोंके सम्यग्ज्ञानके लिए रचा है तो जब वे बहुत तीक्ष्ण बुद्धिवाले हैं तो उनको ज्ञान स्वतः ही सम्भव है। उनके लिए इस शास्त्रका रचना भी व्यर्थ है, जब कि यह कहा जा रहा है कि मुझ अनल्पप्रज्ञने अनल्पप्रज्ञ विद्वान महापुरुषोंके सम्यग्ज्ञानके लिए यह ग्रन्थ रचा, तो जब वे महान बुद्धिके धारी हैं तो उनको सम्यग्ज्ञान होना स्वतः ही सम्भव है, फिर उनके प्रति शास्त्रों की रचना करना व्यर्थ ही है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसी शंका न करना चाहिए क्योंकि उन पुरुषोंको जिनमें कि हम यहाँ अनल्पप्रज्ञाका सद्भाव बता रहे हैं, इस सूत्रग्रन्थके अर्थके ग्रहणमें ही उस विशेषणको लगाया जा रहा है। और ऐसा ही यहाँ कहनेका भाव है जिससे कि यह अर्थ ध्वनित होता है कि जैसे मैं इस ग्रन्थके करनेमें विशिष्ट बुद्धि वाला हूं, उसका ध्यानकार हूँ उसी प्रकार इस सूत्रके अर्थके ग्रहण करनेमें जो विशिष्ट बुद्धि वाले हैं ऐसे महान बुद्धि वाले पुरुषोंके लिए यह शास्त्र रचा है अर्थात् महान बुद्धिके कहनेसे यह अर्थ लेना है कि इस ग्रन्थके अर्थके ग्रहण करनेमें जिनकी बुद्धि महान है उन पुरुषोंके लिए यह शास्त्र रचना की गई है, परन्तु जो पुरुष अन्य शास्त्रोंके द्वारा हेय उपादेय तत्त्वके स्वरूपको भली भाँति जान लेते हैं उनके लिए यह सूत्र नहीं रचा ऐसा अर्थ लेना।

ग्रन्थाध्ययन करके कल्याणलाभ प्राप्त करनेमें ग्रन्थकर्ताके प्रति वास्तविक भक्ति—इस ग्रन्थमें आचार्यदेवने तत्त्वपरीक्षाके साधनका पहिले भली प्रकार वर्णन किया है। इस समस्त वर्णनको जानकर और इससे परीक्षा करनेकी युक्ति समझकर हम तत्त्वके स्वरूपका निर्णय करें और तत्त्व स्वरूपका निर्णय करके हम उसके अनुसार चलें। जैसे कि समस्त पदार्थ अपने स्वरूपसे उत्पादव्ययध्रौव्य वाले हैं सत् होनेसे प्रमेय होनेसे आदिक युक्तियों द्वारा निर्णय करलें कि वस्तु इस प्रकार स्वतंत्र है तो हम ऐसा ही उपयोग बनाकर स्वतंत्र दृष्टि करके अपने मोह रागद्वेषको हटायें और इस अकल्याणमय जगतसे छूटकर अपने शाश्वत कल्याणमय ब्रह्मपदको पायें। ऐसे ही शुभ पुरुषार्थके लिए दर्शनशास्त्रके द्वारा वस्तुस्वरूप की परीक्षा की जाती है इसीलिए भव्य प्राणियोंपर करुणा करके आचार्यदेवने इस मुक्ति-प्रद कुञ्जीरूप न्यायसूत्रकी रचना की है। अब हम उनके इस करुणामयी परिश्रमसे लाभ उठायें, यही हमारी उनके प्रति वास्तविक भक्ति है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समाप्त

Version 1